Chapter-5

पंचम अध्याय

अध्यात्म भाव धारा

गुरू, गुरू शिष्य संबंध, गुरू की महत्ता, संत समागम,
आदर्श भक्तों के लक्षण, भक्ति, प्रेम, विरह, नामजप,
योग, सुरति-निरती, सहजयोग, मन, रहस्यात्मकता

आध्यात्मिक भावधारा

आध्यात्मिक भावधारा नामक प्रस्तुत अध्याय में अध्यात्म किसे कहते हैं ? आध्यात्मिकता से क्या आशय है ? आध्यात्मिक भावधारा के विभिन्न उपकरण एवं रूप कौन-कौन से हैं ? आदर्श भक्त के लक्षण आदि महत्त्वपूर्ण मुद्दों के आवश्यक स्पष्टीकरण के अनन्तर गुजरात के साखिकारों द्वारा विनियोजित एतद् विषयक समस्त विषयों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा ।

सामान्यतः आत्मा परमात्मा संबंधी चर्चाओं को अध्यात्म की संज्ञा दी जा सकती है । अधि + आत्मा = अध्यात्म के अनुसार भी ब्रह्म संबंधी आत्मा परमात्मा परक विवेचन को अध्यात्म की संज्ञा से अभिभूत किया जा सकता है ।[1]

संतों ने तर्क और वाद विवाद के प्रति जो उपेक्षा भाव प्रकट किया उसका मुख्य सम्बन्ध भौतिक बुद्धि से होता है ।[2] वास्तविक सत्ता के प्रति भावना से रत होने पर ही आत्मानुभूति हो सकती है । आध्यात्म तत्व का अनुभव आत्मा ही कर सकती है । प्रत्यक्ष उसका अनुभव नहीं किया जा सकता । वाणी भी उस तक नहीं पहुँच सकती ।[3]

वेदान्त का यह सिद्धान्त संतों को पूर्णतया मान्य था । अतः भावनाओं और अनुभूतियों का मिश्रित रूप ही संतों की उपासना का मूल केन्द्र है । आत्मा के विभिन्न रूपों को केवल संत ही उपलब्ध कर सकते हैं क्योंकि उनकी मान्यताएं

॥1॥ भारतीय संस्कृति का इतिहास - ॥पृ0 25॥

॥2॥ हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि -॥पृ0 377

इन्द्रियातीत होती है । यह आपस में द्वन्द्व की भावना को मान्यता नहीं देता । संतों की मान्यता यह है कि ब्रम्ह के साक्षात्कार का साधन केवल अनुभव ही है । जिस प्रकार तत्ववाद-विवाद की मूल प्रेरिका बुद्धि होती है उसी प्रकार आत्मा-नुभूति की आधारभूत श्रद्धा होती है । अर्थात् श्रद्धा से युक्त होकर ही जीव आत्मान्वेषण करने के कारण ही उसकी आत्मानुभूति स्पष्ट होती है, दृढ़ होती है ।

संस्कृत में कहा गया है "श्रद्धावान लभते ज्ञानं" अतः श्रद्धा के द्वारा ज्ञान प्राप्ति और इस ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् अज्ञान रूपी आवरण के नष्ट हो जाने पर ही जीव आत्माभिमुख हो सकता है ।[1] जिससे उसे आत्मानुभूति होती है ।

इस प्रक्रिया में वाद-विवाद का कोई स्थान नहीं है । वाद-विवाद के छूट जाने पर ही साधक का मन भगवान में केन्द्रित हो पाता है । वास्तव में संतों के मतानुसार ब्रह्म के साक्षात्कार का साधन केवल एक मात्र अनुभव ही है । अतः अध्यात्म पथ में श्रद्धा और विश्वास का महत्त्व अधिक होता है । जिस प्रकार हम बिना लक्ष्य के अग्रसर नहीं हो सकते उसी प्रकार बिना श्रद्धा और विश्वास के अध्यात्म मार्ग में अग्रसर नहीं हो सकते । कबीरदास ने लिखा है बिना श्रद्धा और विश्वास के संसारिक जीव दुःखों से मुक्ति नहीं पा सकता ।[2]

अध्यात्म ज्ञान के अन्तर्गत वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने का उपदेश भी हमें संतों ने दिया है । अर्थात् अपनी असत वृत्तियों के प्रति जीव को तटस्थ रहकर ईश्वरोन्मुख होने की प्रक्रिया ही ज्ञान प्राप्ति का मुख्य साधन होता है ।

वेदों में परमात्मा, आत्मा और प्रकृति के सम्बन्ध में चिन्तन उपलब्ध है ।

हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि [पृ0 38]

ऋग्वेद भारतीय अध्यात्म का प्रथम पुष्प है, जिसमें माना गया है कि कवि अपने हृदय के विचार प्रकाश द्वारा दृश्यमान जगत और अदृश्य जगत के सम्बन्ध और कारणों की खोज करता है ।[1]

उपनिषदों में भी ज्ञान को अज्ञानान्धकार का निवारण करनेवाला माना गया है । इसे सत्य, नित्य, आनन्दमय एवं ब्रह्मस्वरूप कहा गया है ।[2]

कठोपनिषद के अनुसार परमात्मा ने जीव कीइन्द्रियों को बहिर्मुखी करके हिंसित कर दिया है इसी कारण जीव बाध्य विषयों को देखता है, अन्तरात्मा को नहीं ।[3] इन सब प्रपंचों का निवारण ज्ञान द्वारा सम्भव है ।

गीता में भेद में अभेद की प्रतीति करानेवाले ज्ञान को सात्त्विक ज्ञान कहा गया है ।

आचार्य शंकर ने ज्ञान को साध्य न मानकर साधन माना है । अतः ज्ञान प्राप्ति को संतों ने अधिक महत्व दिया है । आत्म चिन्तन द्वारा आत्मसात किया गया ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है ।

संत दादू के अनुसार चर्मचक्षु आत्मचक्षु में तभी परिणत होती है जब उनको अन्तर्मुखी कर लिया जाता है । संत अखा, निरांत, प्रीतम, छोटम आदि कवियों ने इसी विषय पर विचार करके बहिर्वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने का उपदेश दिया है ।

गुजरात के भक्त कवियों ने ज्ञान के द्वारा अपने भ्रम, माया, अज्ञान, पापकर्म, कपटभाव आदि के दूर हो जाने की भावना को अधिक महत्व दिया है ।

----

(1) तुलसीदास : जीवनी और विचार धारा - पृ० 296

(2) •

(3) हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और दार्शनिक पृष्ठ भूमि - पृ० 38।

असत् भावों के दूर होने पर प्रभु का परिचय प्राप्त होना और चित्त को निर्मल पवित्र करने वाले भक्ति भाव का उद्‌भव होना निश्चित माना है । इस भाव का प्रभाव उनकी साखियों में यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है ।

अध्यात्म ज्ञान के लिए एक सच्चे मार्ग दर्शक की आवश्यकता है । साखियों में "गुरू" अथवा "सद्‌गुरू" शब्द का प्रयोग हमें सच्चे मार्गदर्शक का बोध कराता है जो अपने अनुभव सिद्ध ज्ञान के द्वारा अपने शिष्य को उसके इष्ट या लक्ष्य की प्राप्ति कराने में समर्थ हो। अगर देखा जाय तो जीवन के प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, गुरू अथवा अनुभवसिद्ध व्यक्ति के मार्गदर्शन की आवश्यकता है परन्तु अध्यात्म के क्षेत्र में उसका मार्ग दर्शन के बिना उद्‌देश्य में सफलता अनिश्चित है । श्रीमद् भागवत भी गुरू की शरण जाने की सलाह देता है । राजा निमि जब गुरू से यह पूछते हैं कि जिनकी बुद्धि मोटी है वे कैसे संसार सागर को पार करेंगे, तो महर्षि उन्हें गुरू की शरण जाकर अनुग्रह प्राप्त करने को कहते हैं ।[1] अत: ज्ञान बिना गुरू के सम्भव नहीं ।

जिस प्रकार भ्रमर मधु की खोज के लिए एक फूल से दूसरे फूल पर जाता है उसी प्रकार साधक को ज्ञान प्राप्ति के लिए एक सद्‌गुरू की खोज करनी चाहिये ।[2]

मध्यकालीन गुजरात के मध्यवर्गीय समाज में गुरू बनाना इतना प्रचलित था कि अखा "निगुरा" नहीं रह सके । उन्होंने एक सद्‌गुरू की खोज में जीवन के अनेक वर्ष व्यतीत किये । अखा ने गोकुलनाथ गोस्वामी जैसे माने हुए विद्वान को

---

(1) तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासु श्रेय उत्तमम् ।
शब्दे परे च निष्णात ब्रह्मण्युपशमा श्रेयम् ।।
तत्र भक्तान धर्मान शिक्षेय गुर्वात्मदेवत: ।
अजापयानुवृत्या येस्तु व्येदामाडडत्मेदा हरि: ।।
– श्री मद् भागवत् एकादश स्कन्ध श्लोक संख्या 21–22

(2) हिन्दी साहित्य की निर्गुण काव्य धारा (पृ0 201)

गुरू बनाया पर निगुरा मन जिसका संस्कार करने के उलिए उन्होंने "गुरू थयो" कहा है, "नगुरा" ही रहा ।[1] पुन: निगुरे मन को गुरूमुखी करने के लिए बनारस निवासी ब्रह्मानंद स्वामी को अपना गुरू बनाया । अखा ज्ञानी संत थे भक्तिमार्ग में उन्हें अनुकूलता दिखाई नहीं दी । केवल देहधारी गुरू के चरणों में रत रहना अखा को समीचित नहीं लगा । अन्तत: अखा ने अपनी आत्मा को ही गुरू स्वीकार किया । आत्मानुभूति द्वारा ही ब्रह्मानंद की प्राप्ति हुई ।

गुरू का स्वरूप :

अखा के अनुसार अध्यात्म के क्षेत्र में बाह्य-साम्प्रदायिक गुरू की आवश्यकता उतनी अधिक नहीं है । उनकी गुरू विषयक अवधारणा में वे अन्धश्रद्धा के पक्षधर नहीं है, अत: उनका मत है कि शिष्यों के साथ कपट करनेवाले गुरूओं से सावधान रहकर शिष्य को ऐसे गुरू का चयन करना चाहिये जो ज्ञानी, विवेकी, निर्लोभी सच्चा मार्गदर्शक और ब्रह्म प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो -

"सदगुरू साचा सो अखा, जाकु साँइयाँ सेति मीलाप
सो ही मिलावे शिष्य कु, जो पाया होये आप ।।[2] ।7

उपरोक्त गुणों से युक्त गुरू ही ब्रह्म का साक्षात्कार कराने में सहायक होता है । अपने अनुभव सिद्ध ज्ञान के द्वारा ही गुरू शिष्य को लक्ष्य स्थल तक पहुँचाता है ।

सदगुरू की महत्ता को स्पष्ट करते हुए अखा कहते हैं कि एक सदगुरू के बिना मानव का उद्धार सम्भव नहीं है । मार्गदर्शक की आवश्यकता बताते हुए अखा कहते हैं कि जिस प्रकार बलवान हाथी का उचित मार्गदर्शन के बिना उसके बल का यथार्थ उपयोग नहीं होता उसी प्रकार मानव के इस मन रूपी हाथी को एक उचित मार्गदर्शक की आवश्यकता है । इसी भाव को स्पष्ट करने के लिए

----

§1§ अक्षय रस - कुँवरचन्द्र प्रकाश सिंह - §पृ0 21§

§2§ अक्षय रस - §निवट ज्ञान को अंक§ - §पृ0 196§

अखा ने - "चाँदा पोड़ी वालने ते वाहवा केरी मात" तथा "आला लंवे लाय" कहकर गुरू की आवश्यकता की स्थापना की हैं। गुरू के मार्गदर्शन के बिना जीवन निरर्थक माना जाता है। गुजराती में लिखी अखा की निम्नलिखित साखियाँ उपरोक्त भावों को स्पष्ट करती हैं -

अखो कहे सदगुरू बिना जननुं काम न थाय
मनने हाथ आंधवो, बालीयो मार्यो जाय। 1

अखो कहे सदगुरू बिना गली चोपड़ी वात,
चांदा पोड़ी वालने ते वाहवा केरी मात। 2

अखा कहे सदगुरू बिना आला लुंबुं लाय.
उदर काजे डुंगरो खड़ता ते मरी जाय। 3

अखा कहे सदगुरू बिना, अर्थ सरे नहीं तर्त,
जनम कोट पर वायदो, ते तो देवालानी सर्व। 4

रवि साहब गुरू को महत्व देते हुए स्पष्ट करते हैं कि पोथी और वेद पढ़ने के बजाय आत्मज्ञान के लिए गुरू के संग और उनकी उपासना करनी चाहिए। बोध चिन्तामणि में उन्होंने कहा है कि -

"वेदोच्चार को बन्द कर। शोधी ले गुरू को संग ।।" 2

रवि साहब ने एक गुजराती साखी में गुरू के आदर्शभाव को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जीवन में अगर सच्चा गुरू मिल जाय तो इस भवसागर से पार पाने में एक पलक भी नहीं लगता। उनके मार्गदर्शन से जीवन की समस्याओं का समाधान

---

1. अखा नी साखियो - अप्रकाशित ह. लि.
(1) कच्छी संतों की हिन्दी वाणी - (पृ0 29)

हो जाता है और जीव मुक्त हो जाता है -

> "मर्म लघ्यो जे पद तणों तो पामें वस्तु पार,
> कहे रवीदास सदगुरू मले तो, पलक न लागे वार । ।

सदगुरू के ज्ञान दान से ही जीवन के भेद को समझा जा सकता है क्योंकि जीवन के गूढ़ तत्वों को जान लेने पर ही जीव उनसे खुद की रक्षा कर सकता है। क्योंकि "आप्यो पूरण भेद" केवल वही कर सकता है। अहंकार की भावना आदि के नाश होने पर ही "जेहमा टले अहमेव" के कारण ही "पूरण भेद" मिलता है।[1] अतः जीव को ईश्वर से दूर रखने के कारणों को केवल सदगुरू का ज्ञान ही नाश कर सकता है। इस प्रकार जीव को ईश्वरोन्मुख करने का महत्वपूर्ण कार्य गुरू करता है।

मोरार साहब ने अपने सदगुरू रवि साहब पर "सदगुरू वियोग" और "सदगुरू महिमा" नामक एक छोटा सा काव्य लिखा है। अपने गुरू का दीदार उन्होंने दिल के भीतर किया था जो अटल और अभंगी है। अभय और अमर है। वे गुरू महिमा बखानते हैं और भितरी अंधकार का विनाश करके ज्ञानरूपी प्रकाश देनेवाले मार्गदर्शक, गुरू को मानते हैं। मोरार साहब ने सदगुरू को सगुण माना है। उनके अनुसार गुरू के द्वारा ही विश्व कल्याण सम्भव है। भक्ति और मुक्ति के लिए सदगुरू का मार्गदर्शन आवश्यक है। गुरू कृपा से ही शुद्ध आचार विचार और व्यवहार सम्भव हो सकता है। ऐसे सदगुरू को मोरार बार-बार प्रणाम करते हुए दीन वाणी में मधुर भाव से कहते हैं -

> सतगुरू शुद्ध स्वरूप है, शरणागत सुखधाम,
> साँस उसाँसे समरिए, नरंकार रविराम।[2]

----

(1) प्रापत होय तो पामिये, जेहमा टले अहमेव - 5 रविसाहब नी साखियों (पृ0

(2) कच्छी संतों की हिन्दी वाणी - (पृ042)

मोरार साहब ने "गुरू महिमा" के अन्तर्गत अपने गुरू के महात्म्य का वर्णन किया है। उनके अनुसार उनके भीतर के त्रिगुणात्मक अंधकार का विनाश उनके रवि गुरू के ज्ञान रूपी प्रकाश ने किया है और आत्मानुभव का उदय होते ही मोरार ने उस विराट स्वरूप का दर्शन किया है। उन्होंने स्पष्टत: स्वीकार किया है कि गुरू, देवों का भी देव है। सत्य का समर्थ - श्रजनहार है ऐसा वेद-पुराणों ने कहा है। अत: उसी गुरू का गुणगान करते हुए कवि कहते हैं कि

रवी गुरू ज्ञान प्रकाशते, त्रिगुण तिमिर को नाश
आतम अनुभव के उदय, भयो स्वरूप समान।

गुरू देवन को देव हो, समरथ सरंजन हार।
भाखें वेद पुराण आन, गावै गुन मोरार ।। 2

संत प्रीतम ने अपनी साखियों में गुरू को अधिक महत्व दिया है। प्रत्येक पद के अन्त में गुरू की महिमा का गान विविध रूप में किया है। उन्होंने "महिना" नामक रचना का प्रारम्भ गुरू की महिमा का गान करते हुए किया है। जिसमें तीन महत्वपूर्ण साखियों का समावेश है। इसमें गुरू के चरण की वन्दना करके उनके स्नेह रूपी प्रसाद की तुलना अमृत से की है। उनके स्वरूप का वर्णन वाणी नहीं कर सकती, विशालता को अनुभव करने की क्षमता बुद्धि और मन से परे होने के कारण उपमा रहित है। उनकी चरण-वंदना का महत्व इतना अधिक है कि इससे जन्म और मरण दोनों मिट जाते हैं। किसी शुभ कार्य का आरम्भ गुरू वंदना से करना ही प्रीतम का मुख्य उद्देश्य था -

सदगुरू ने चरण नमु, मांगु प्रेम प्रसाद
दया करीने दीजीये, हरिरस अमृत स्वाद।

वाणी सके नहीं वरणवी, सदगुरू तणु स्वरूप,
बुद्धि मन पहोंचे नहीं, उपमारहित अनूप।

परथम पूरण प्रेमशुं बदुं सदगुरू चरण 1
ताप टले संसार ना, मटे जन्म ने मरण।

1 प्रीतम वाणी - पृ॰ 6

प्रीतम ने गुजराती में गुरू के एक विश्व विराट स्वरूप की कल्पना की है। "वाणी सके नहीं वरणवी, सदगुरू तणु स्वरूप" कहकर शास्त्रों के "गुरू ब्रह्मा, गुरू विष्णु" मंत्र का अपनी साखियों में मानो भाष्य किया है।

"ताप टले संसार ना, मटे जन्म ने मरण"

द्वारा कवि ने गुरू के उद्धार की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है। जन्म और मरण जैसे दुःखों से मुक्ति दिलानेवाला व्यक्ति महान होता है। अतः कवि उनकी आराधना "प्रथम पूरण प्रेमशु" करते हैं जिसमें निश्छलता और पवित्रता नामक दो बहुमूल्य तत्वों का समावेश होता है। अर्थात् कवि द्वारा रचित गुजराती साखियों में गुरू विषयक अवधारणा एक विशेष रूप में परिलक्षित होती है।

भ्रम रूपी परदा को हटाने में भी गुरू की सहायता आवश्यक है जिससे जीव माया से मुक्त होकर ब्रह्म के सामीप्य का अनुभव करता है -

प्रीतम पडदा भरम का गुरू गम से कीया दूर,[1]

पदों के अन्त में साखी लिखने का प्रघात, संतों की अपनी निजी विशेषता है। प्रीतम इस प्रकार की रचनाओं में सिद्धहस्त हैं। पदों के अन्त में गुरू की महिमा का गान करना प्रीतम अपना धर्म समझते हैं।

मन को सतपथ पर चालित करने के लिए प्रीतम ने गुरू के ज्ञान रूपी अंकुश की आवश्यकता को प्रधान माना है। अविद्या रूपी माया के वश में जिस का मन हो वह एकचित्त होकर ईश्वर में रम नहीं सकता -

ए मन कु सीक्षया करे सुख नारद सीव सार,
प्रीतम सदगुरू शब्द से, करी मन कु तिछकार

प्रीतम मन गदंदगत फटत अविधा साथ
पीलवान गुरू वस करे, ज्ञान अकुस लीए हाथ्य।[2]

---

(1) प्रीतम वाणी - (पृ० 161)
(2) प्रीतम वाणी - (पृ० 233)

अखा की तरह प्रीतम ने भी एकाधिक गुरुओं का संग किया था । इन्होंने अपनी साखियों में कबीर की तरह ही -

गुरू गोविन्द दोउ खड़े काके लागु पाय,
बलिहारि गुरू देव की गोविन्द दिओ बताय ।।

भावों को अपनी साखियों में स्थान दिया है -

प्रथम नमुं गुरु देवने जेणे आप्युं ज्ञान
ज्ञाने गोविन्द ओडख्या, टण्यु देह अभिमान ।[1] ।

कबीर की भावधारा में बहकर प्रीतम ने गुजराती में गुरू महिमा का गान किया है । उनकी उक्ति "गुरू नारायण नर के रुपा " में गुरू को नारायण कहा गया है ।

गुरू ब्रम्ह की एकता :

गुजरात के संतों ने कहीं कहीं अपनी साखियों में गुरू को ईश्वर से भी महान माना है । कई साखियों में दोनों की समानता पर अधिक बल दिया है ।

गुरू ईश्वर ते अधिक है, ब्रह्म रूप भगवान
कहे प्रीतम पद सरसता, कहे कोटि अज्ञान ।। 2

निरांत ने भी अपनी गुजराती साखियों में गुरू और गोविन्द को अर्थात् ईश्वर को अधिक बल दिया है । उनके अनुसार हरि, गुरू और संत इन तीनों का संग त्रिलोक का सार तत्व है । इनका रूप भी एक ही है ।

तत्वसार त्रिलोक मां गुरू गोविन्द एक रूप
आद्य अंत महज एक छे, हरि गुरू संत स्वरूप ।।[2] 2

---

(1) प्रीतम वाणी - (गुरू महिमा) (पृ0 4।)
(2) निरांत काव्य - (पृ0 ।)

ज्ञानीजी ने भी गुरू और राम को एक माना है । सत गुरू, संत और राम की एकता प्रतिपादित करते हुए कवि कहते हैं कि

सतगुरू साधु रामजी ।
नाम तीन अंग एक ।।[1] ।0।

रवि साहब ने अपने गुरु भाण साहब को ब्रह्म कह कर सम्बोधित किया है -

सदगुरू भोले श्रीभाण ब्रह्म
प्रगट्या ज्ञान प्रकाश । ।।

सदगुरू मीले श्री भाण ब्रह्म
नाम बताया ऐक । ।3

सतगुरू मीले श्री भाण ब्रह्म
नाम बताया सार ।[2] ।4

एक स्थान पर कवि ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि गुरू और गोविन्द दोनों एक है परन्तु ~~भि~~ उनमें भिन्नता है तो केवल जात की । एक ईश्वर है और दूसरा मानव है -

गुरू गोविन्द दो एक है, देखनकु दो जात, ।48 ।पृ० 225।

उपरोक्त साखियों में कवि ने गुरू और ब्रह्म की समानता को स्पष्ट किया है । गुजरात के साखिकारों में गुरु भक्ति का अथाह प्रमाण मिलता है ।

वस्ता ने भी गुरु गोविन्द की एकता स्थापित करते हुए दोनों में अद्वैत भाव को स्पष्ट किया है । दोनों में भेदभाव को अन्त करने पर भक्ति में पराकाष्ठा आने के कारण ज्ञान, श्रद्धा और भक्ति का उदय भक्त के मन पर एक

।1। ज्ञानीजी नी साखियाँ - ।गुरू अंग। ह. लि.

।2। रविसाहब नी साखियाँ - ।पृ० 215।

9

साथ होता है । अतः जीवन में ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करनेवाले भक्त को गुरू और ईश्वर में एकता स्थापित करके एकनिष्ठ भाव से ज्ञानार्जन करना चाहिये :-

गुरू गोविन्द एकता सही एनों नहीं प्रेत,
वस्ताविश्वंभर ते सदा आपे आप अद्वैत ।[1] 24

उदाधर्म के प्रवर्तक जीवणदास कहते हैं कि गुरू और राम में केवल इतना ही अन्तर है कि दोनों के नामभिन्न है । अन्यथा दोनों एक ही है । गुरू श्रद्धा की यह पराकाष्ठा है । उदाधर्म में गुरू का महत्व अधिक है । इस धर्म के अनुयायी कबीर, जो कि जीवणदास के गुरू थे की आराधना करते हैं और उनके द्वारा बताये मार्ग पर चलते हैं । उनके धर्म ग्रंथ भी उनके ~~द्वार~~ गुरू द्वारा लिखी गई वाणियाँ हैं जिनका पाठ और मनन वे विभिन्न धार्मिक अवसरों पर करते हैं । गुरू को सर्वेसर्वा मानते हुए जीवणदास द्वारा लिखे गये ग्रन्थ और उनकी गद्दी की पूजा नित्य पूजन का अंग है । जीवणदास अपने गुरू और ईश्वर में अभेद भाव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

सतगुरू जीवण श्रामलो । दास कबीरजी राम ।।
अन्तर तो एतो पडयो । एक रूप दो नाम ।।[2] 73

गुरू शिष्य का सम्बन्ध :

गुजरात के साखिकारों ने गुरू और शिष्य दोनों को महत्व दिया है । अगर गुरू को मुमुक्ष शिष्य मिल जाय तो उसकी साधना सफल होती है अन्यथा शिष्य को सच्चा साधक नहीं बनाया जा सकता है । इन दोनों का सम्बन्ध एक दूसरे के पूरक है । शिष्य को सच्चा गुरू मिलना चाहिये और गुरू को ब्रह्म जिज्ञासा से आतुर शिष्य ।

----

(1) वस्ता नी साखियों - (गुरू अंग)
(2) उदाधर्म पंचरत्न माला - (गुरू अंग) (पृ० 100)

शिष्य को गुरू में इतनी श्रद्धा होनी चाहिये कि गुरू के उपदेश और उनके द्वारा दिये गये मार्गदर्शन का अनुसरण करें । वह उन पर इतनी आस्था रखे कि गुरू अपना सम्पूर्ण अनुभव जनित ज्ञान शिष्य को प्रदान करें । वस्ता ने गुरू और शिष्य के सम्बन्ध को चाँद और चकोर का सम्बन्ध कहा है ।[1] गुरू के साथ मिलकर एक भाव होकर ज्ञानार्जन करने के कारण शिष्य की साधना में एकनिष्ठता आती है । शिष्य को साधना में इतना रत हो जाना चाहिये कि गुरू का स्वरूप और शिष्य के स्वरूप में एकरूपता आ जाए ।

"गुरू आपमा आप गुरू में सूरत थई खेल"

गुरू के वचनों की स्वाती बुंद के साथ तुलना करके, शिष्य के महत्व को परोक्ष रूप से स्थापित किया है । जिस प्रकार सिप के मध्य स्वाति बुंद के पड़ने पर वह मोती बन जाता है उसी प्रकार एक गुरू के वचनों का, आत्मसात एक सुयोग्य शिष्य के द्वारा हो तो, गुरू के वचनों को पालन करके अपनी साधना पूर्ण कर सकता है । अत: जिस प्रकार एक शिष्य को सदगुरू की आवश्यकता होती है उसी प्रकार एक गुरू को भी एक सत् शिष्य की नितांत आवश्यकता होती है । सद वचनों का सदपात्र में दान होना भी आवश्यक है -

स्वाती बुंद गुरु शब्द हे, पात्र जाणों वो शिष्य ।"

तेजानंद कहते हैं कि सदगुरू के शब्द को कोई सुशिष्य ही ग्रहण कर सकता है और उनके ज्ञान में इतनी शक्ति है कि बिना मांगे ही शिष्य को फल की प्राप्ति हो जाती है । अत: गुरू के महत वचनों को आत्मसात् करनेवाला सुशिष्य ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

"तेजा" सदगुरू शब्द को ग्रहो सुशिष्य कोई
बीन मांगे फल पाव ही, सब कारण सिद्ध होई ।।[2]2

----

§1§ गुरू चन्द्र शिष्य चकोर काल ए अंगार
सेवक जब गली जाय ते, गुरू के आधार । 26

§2§ तेजानंद की साखियाँ – पृ. 605

वस्ता के अनुसार गुरू को ऐसा शिष्य मिलना चाहिये जो अपना "तन, मन, धन" सब सौंपकर गुरू की सेवा करें । ऐसे शिष्य को "निरंजन देव" की प्राप्ति सहज ही हो जाती है । अतः गुरू को समर्पणकारी शिष्य चाहिये और शिष्य को सर्वज्ञाता गुरू की नितांत आवश्यकता है -

"तन, मन, धन सब अर्प के करो गुरू की सेव,
प्रताप जागे तेह नो मले निरंजन देव ।।"[1] 23

गुरू की महत्ता :

गुजरात के संतों ने ब्रह्म प्राप्ति का मूल आधार गुरू को मानते हुए उनकी महत्ता को अपनी साखियों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है ।

वस्ता ने गुरू को महत्त्व देते हुए उसे सच्चा पथप्रदर्शक कहा है । अपनी साखियों में गुरू की उन्होंने आकाश, अग्नि और समुद्र के साथ तुलना की है । गुरू का स्वभाव आकाश की तरह होना चाहिये जिससे कि वह बिना भेदभाव के सबको समान दृष्टि से देख सके । उसके स्वभाव में अग्नि का भी संमिश्रण होना चाहिए जिससे कि शिष्य के अवगुणों को जलाकर भस्म कर सके और समुद्र की तरह शांत और स्थिरचित्त होकर शिष्य को ब्रह्मज्ञान द्वारा दीक्षित करे ।

सदगुरू ताकु जाणीए जाकी आकाश जेसी रीत
सर्व उपर सरखो सदा नहीं वेर, नहीं प्रीत । 24

सदगुरू ताकु जाणीए जाकी अग्नि जेसारीत
द्वेत कंवर दहन करे, ताहां न राखो प्रीत । 25

स्वभाव सदगुरू तणों समुद्र जेसो धार
सरिता सब तामें भके आप न नीकले बहार । 31

---

(1) वस्ता नी साखियो - (अंग गुरू वंदन को) है· लि·

प्रीतम गुरू को इतना महत्व देते हैं कि उनकी सहायता से ही भ्रम रूपी परदा का नाश होता है । भ्रम जो मायाजनित होता है और जीव और ब्रह्म के बीच एक दूरी कायम करता है इस दूरी को केवल गुरू का उपदेश और ज्ञान ही मिटा सकता है । इस प्रकार ब्रह्म और भक्त के मध्य एक सेतु बनाने का दुष्ठकार्य गुरू करता है अत: प्रीतम के अनुसार -

"प्रीतम पड़दा भ्रम का गुरु गमते किया दूर"[1] ।

संतराम महाराज ने गुरू भक्ति से ओत-प्रोत होकर "गुरू बावनी" की रचना की । इसके अन्तर्गत इनकी गुरू विषयक अवधारणाएँ निहित है । सतगुरू के मिलने के बाद ही उनका मन अन्यत्र भटकना छोड़कर ईश्वर में रम जाता है । इनके उपदेश से ही मन माया रूपी जाल टूटा ,गुरू न मिलते तो मन मेरा, मेरो भाव में ही फंसा रहता और ब्रह्मदर्शन से वंचित रह जाता । सदगुरू के साथ, एकात्म होने पर ही ब्रह्म का दर्शन हुआ जिससे मेरे मन के अंधकार और अज्ञान का नाश हुआ वही सच्चा मार्गदर्शक, उपदेशक और कष्टहारी है । निम्नलिखित साखियाँ गुरू महात्म्य का प्रमाण करती हैं -

मेरे मन की क्या कहूँ धाता औरम और
सतगुरू मोए आन मिल जब चित बेठा एक ठोर ।। 5

सतगुरू ने महान कार्य यह किया कि -
माया में से दूर किया ने आना एक ही पार
सतगुरू मोए आन मिले ऐ देह धरे का सार ।। 6

एक सच्चे मार्गदर्शक की भांति गुरू ने —

मैं मेरी में भूला पड़ाता भूला भूला फिरता
सतगुरू मोए आन मिले जब तार हुआ एक सरिता ।।[2] 12

----

(1) प्रीतम वाणी - (पृ0 16)

(2) गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी - (पृ0 256 से 257)

संत करूणा सागर ने गुरु को "चैतन चित्त" कहकर संबोधित किया है । अज्ञानियों के उद्धार हेतु यही चैतन्य चित्त ने मानव तन धारण किए हुए हैं । जन्म मरण और मोक्ष का भेद केवल सदगुरू ही बता सकता है । जन्म-मरण का निरंतर संशय,जो मानव को द्विधा में डालता है उसका समाधान करके, स्पष्ट करने का कार्य सदगुरू के माध्यमसे ही हुआ । अत: करूणासागर के अनुसार सच्चा पथ प्रदर्शक और उपदेशक ही सतराह में भक्त को ले जा सकता है और अपने अनुभव जनित ज्ञान से ही भक्तों की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करता हैं । इसलिए कवि ने मोक्ष का दाता सतगुरू को माना है और यह स्पष्ट किया है कि उनके शरणमें जानेवाला निवार्ण को अवश्य प्राप्त होता है । "अपनी "गुरू बावनी" में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए करूणासागर साखियों में लिखते हैं कि

सदगुरू दाता मोक्ष का, जाहेर जुग मां जाण
शरण गये जे जे जन, पाये पद निर्वाण ।। 1

गुरू मेरा चैतन चिद, आये हु मन तक धार ।
जनम मरण भये भक्तणों, सेंशे दिया सितार ।। 2

भक्त कवयित्री ओखा ने भी अपने गुरू लाल साहब का गुणगान करते हुए साखियाँ लिखी है । गुरू कृपा से ही ओखा ने इस प्रपंची संसारी जीवन से छुटकारा पाया और ईश्वर के भजन मनन में व्यस्त हो गईं । सदगुरू के मार्गदर्शन से ही हरि मिलन की आशा लगाये ओखा ब्रजधाम में खड़ी है । गुरू पतित को पावन करनेवाले और अनाथों के नाथ ने उस पर कृपा करके हरि प्राप्ति के लिए ओखा को ब्रजधाम भेजा और दु:खों से उबारा ।

"लाल साहब के लाड़ली, ओखा बड़ी सुभाग,
ब्रज में जाय ठाढ़ी रही, हरि मिलन की लाग ।।"

"सदगुरू परम कृपा निधि" कहकर ओखा ने गुरू के कृपा की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है । उसके गुरू "लाल साहब" अनाथों के नाथ हैं ।

{1} गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी - {पृ0 286}

दादू को अपने ज्ञान के पुष्ट प्रमाण स्वरूप ऐक ऐसे गुरू की आवश्यकता थी जो उन्हें साधना के क्षेत्र में सहायता करे । संसार के माया मोह के जाल से छुटकारा पाने के लिए धर्म और ज्ञान का अमृत पिलाने वाला गुरू ही होता है । वही सच्चा राह दिखाता है एक सच्चे पथप्रदर्शक की खोज, दादू ने भी की और अपने उपदेशों के माध्यम से गुरू की महत्ता को प्रतिष्ठित किया ।

दादू के अनुसार जब गुरू की दया होती है अर्थात् जब शिष्य अपनी भक्ति के द्वारा गुरू को प्रसन्न कर लेता है जब गुरू उसे ज्ञान प्रदान करता है जिसके फलस्वरूप भक्त में दिव्य ज्ञान की ज्योत जागृत होती है ।

"दया भई दयाल की तव दिपक दिया जगाई"
- गुरू दैव को अंग

दादू की आस्था एवं निष्ठा से भरी खोज से प्रसन्न होकर स्वयं परमेश्वर ने एक वृद्ध का वेश धारण किया और दादू को दीक्षा प्रदान की जिसके बिना दादू अज्ञानी थे और उनको ऐसा प्रतीत होता था कि इस दुनिया में आकर उन्होंने अब तक केवल विष का ही पान किया है । अत: -

"दादू गुरू के ज्ञान बिन विरवे हलाहल खाई"
- गुरू दैव को अंग

हरजीवनदास ने गुरू की महत्ता का बखान करते हुए स्पष्ट किया है कि उनके गुरू खीम साहब ने उनको उपदेश देकर सच्चा मार्गदर्शन कराया है जो उनके ईश्वर प्राप्ति में सहायक सिद्ध हुआ । अज्ञानी व्यक्ति गुरू के उपदेश की महत्ता को समझ नहीं पाता और इस संसार रूपी भवसागर में फंस अपना जीवन विषम बना लेता है । अत: हरजीवन कहते हैं कि गुरू वचन अनमोल होता है और उसके श्रवण मनन से शिष्य को कभी भी विरत नहीं रहना चाहिये ।

खीम सदगुरू के वेन को, हरजी न बुझे गंवार
ताये भूले भवारथी, आयु सेह विषधार । ।

खीम साहब गुरू देव को, डूबन लियो उतार
हरजी वचन मत चूकीयो, उबरन यहाँ मनपार ।[1] 3

बाबा चेतन स्वामी ने गुरू की महत्ता को अपनी साखियों में अधिक महत्व दिया है । उनकी ब्रहम प्राप्ति और अविधा रूपी माया, दोनों के स्वरूप का ज्ञान कराने में उनके गुरू तेजानंद का ही मुख्य योग है । उनकी सहायता के बिना अध्यात्म मार्ग में अग्रसर होना असम्भव माना है । केवल सांसारिक माया मोह से दूर भागने से ही अध्यात्म मार्ग में अग्रसर नहीं हुआ जा सकता इसके लिए एक सच्चे मार्गदर्शक की आवश्यकता है "प्यारे मोहे पोहचाईयों" कहकर गुरू की महत्ता पर बल दिया है ।

माया से मुह मोड़के चेतन भागे दूर
प्यारे मोहे पहुचाइयों, तेजानंद हुजून ।[2] 4

गुलाबदास ने गुरू की महत्ता दर्शाते हुए अपनी साखियों में अपने गुरू कृष्णदास के द्वारा सुनाये गये सतनाम के द्वारा ही उनके मन में भ्रम रूपी परदा के नाश होने का विवरण दिया है जिससे उनको ईश्वर का दर्शन सहज रूप से ही हो गया । अतः ईश्वर के दर्शन कराने में गुरू का महत्वपूर्ण स्थान है । गुलाबदास ने अपने गुरू विषयक अपनी अवधारणा का निरूपण करते हुए उसका नियम पूर्वक पालन करना ही जीवन का प्रधान ध्येय माना है । इसी भाव का वर्णन उनकी साखियों में लक्षित होता है । गुरू चरण की वंदना करना ही अपना प्रधान धर्म समझा -

सतनाम सुनाईया, कृष्णदास गुरूदेव
तादिन पड़दा टूट गया, दिखें अवधू भेद ।[3] ।

----

(1) हरजीवन साहब नी साखियों - हस्तप्रत - शंकरलाल राणा

(2) हस्तपुलिखित - शंकरलाल राणा

(3) हस्तलिखित - शंकरलाल राणा

राजे भगत ने ब्रह्म की प्राप्ति के लिए एक मात्र साधन गुरू को माना है । उनके पथ प्रदर्शन के बिना तीनों लोकों का उद्धार होना असम्भव है । उनकी गुरू के प्रति निष्ठा इतनी अधिक है कि उन्होंने उस स्थान को पवित्र और तीर्थ स्थान का श्रेय दिया है जहाँ गुरू का निवास हो ।[1]

राजे ने गुलाबदास की तरह गुरू सेवा पर अधिक बल दिया है, अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी सेवा में उत्सर्ग करना चाहते हैं क्योंकि उनके चरणों में ही द्वारका और गोकुल धाम है ।[2]

अर्जुन गुरू के द्वारा दी गई ज्ञान की बखान करता हुआ स्पष्ट करता है कि मैं अर्थात् बिना पंख ॥ज्ञान॥ का पक्षी हूँ, मेरे पंख तो सतगुरू के ज्ञान हैं और उसी ज्ञान की सहायता से मैं आसमान में उड़ता हूँ ।

तेजानंद ने गुरू के उपदेश को महत्वपूर्ण बताया है और जो शिष्य उनके उपदेशों को मानकर निष्ठापूर्वक चलता है उसे ब्रह्म प्राप्ति में कोई बाधा नहीं होती । "घट में घोर अंधियारा" इसको नाश करने का महत्वपूर्ण कार्य गुरू करता है । भ्रम रूपी पड़दा, गुरू के वचनों द्वारा ही मिट सकता है । क्षण भर में उजियारा होता है यह केवल सतगुरू की कृपा का ही परिणाम है । जिस प्रकार दिन में दिनकर और रात में चाँद कें आने से उजियारा होना है उसी प्रकार सदगुरू के आने से शिष्य के घर में उजियारा होना भी निश्चित है ।

तेजा ने प्रकृति के सनातन नियमों के उदाहरणों के द्वारा गुरू की शाश्वत महानता का निरूपण किया है । प्रकृति के नियमों में जिस प्रकार अनित्यता असम्भव है उसी प्रकार गुरू के कार्यों में भी अनित्यता असम्भव है ।

॥1॥ गुरू सेवा से पाइये के हे राजे तें राम,
तीन लोकना देखलु, गुरू बीन होत न काम । 87 ॥पृ0 217॥

॥2॥ गुरू तांहां गंगा द्वारका
गुरू तांहां गोकुल गाम,
कहे राजे गोर सेवता काया रहा न काम । 89 ॥पृ0 217॥

सदगुरू बड़े दयानिधि, दियो बिमल उपदेश
"तेजा" अपना जान के, काटे भव कलेश । 1

"तेजा" सदगुरू शब्द को ग्रहो सुशिष्य कोई
बीन मागे फल पावही, सब कारज सिद्ध होई । 2

जब लग पड़दा भरम का, छाय रहे अंधियार
"तेजा" सदगुरू की कृपा, छीन में हुआ उजियार । 3

दिन में दिनकर आईया, चंदा रैन उजियार
"तेजा" सदगुरू के बिना, घट में घोर अंधियार । 4

– तेजानंद की वाणी – पृ 605

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि अध्यात्म के क्षेत्र में गुरू का महत्व सर्वोपरी है । गुजरात के साखिकारों ने अपनी साखियों में गुरू को सर्वोच्च स्थान दिया है । गुरू के प्रति अनन्य सम्मान और गहरे भक्तिभाव के परिणाम स्वरूप इनकी लेखनी ने गुजराती और हिन्दी दोनों भाषाओं में गुरू की महिमा का विपुल गान किया है ।

संत समागम :

संतों में यह दृढ़ विश्वास होता है कि भगवत् कृपा का परिणाम ही "संत समागम" और "संत मिलन" है जिससे अज्ञान अविधा माया आदि का नाश होता है । सतसंग के द्वारा ही चित्त की अशुद्धियों का निराकरण होता है और धैर्यपूर्वक नियमित रूप से सतसंग करते रहने पर अन्ततोगत्वा ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होता है या ब्रह्म जिज्ञासा तृप्त होती है । परिणाम स्वरूप हमारा सामान्य पारिवारिक जीवन दिव्य जीवन में रूपान्तरित हो जाता है ।

गुजरात के संतों ने इस भवसागर के पार पहुँचने के लिए, इस माया रूपी जगत के मोहजाल से बचने के लिए सतसंग की आवश्यकता का स्थान-स्थान पर निरूपण किया है । राम भजन और सत्संग से करोड़ो दु:ख दूर होते हैं । कितने ही जन्मों के पुण्य संचय करने से सतसंग प्राप्त होता है ।

"पुण्य पुंज बिन मिलही न संता,
सत्संगति संसृति कर अंता"

सतसंग और भजन पारसमणि के समान हैं, जिसका अधम पारस जीव स्पर्श करता है तो उसके भव दुःख नष्ट होते हैं उसे निर्मल दृष्टि प्राप्त होती हैं ।[1]

तुलसीदास ने सतसंग की व्याख्या करते हुए कहा है "तुलसी संगत साधूकी कटे कोटी अपराध" । अखा इसी कारण बार-बार कहते हैं "सेवो हरि गुरु संत ने" इस प्रकार हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में गुजरात के संतों ने संतों के सत्संग की व्याख्या की है ।

संत लोग साधु-संतों को ईश्वर रूप मानते हैं । साधु संतों के महत्त्व का प्रतिपादन नहीं किया है बल्कि सत्संगति को सहज साधना का प्रधान तत्व ध्वनित किया है ।[2] इनकी वाणी सत्संगति की महिमा से पूर्ण है । मानव समाज में प्रेम, विश्वास, ज्ञान-उपदेश देते हैं ।

निर्वाण साहब ने अपनी साखियों में संत समागम की महिमा की बखान करते हुए लिखा है -

तीर्थ खोजके क्या करें, संतो तीर्थ महान,
सो ही तीर्थ में जाय के, प्रेम बुझे निर्वाण ।

तीर्थ यात्रा के कारण जो पाप मुक्त होने की प्रथा है उसे निर्वाण के अनुसार संतों के समागम से दूर किया जा सकता है क्योंकि पवित्र आत्मा, ज्ञानी महापुरुष का संग हमें ज्ञान दान के द्वारा पवित्र बनाता है । निर्वाण साहब के समय में अनेक संत समागम का आयोजन हुआ जिससे विभिन्न ज्ञानी पुरुषों का समागम एक साथ हुआ और भक्त गण लाभान्वित हुए । इन विभिन्न प्रदेशों से वहाँ आनेवाले

----

(1) कच्छी संतों की हिन्दी वाणी - (पृ0 100)
(2) हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और दार्शनिक पृष्ठभूमि - (पृ0 125)

महापुरूषों में गुरू नानकजी दक्षिण देश से पर्यटन करते हुए नर्मदा के तट पर भरूच आये ।[1] ऐसा बताया जाता है इनके आगमन से भक्त मंडली में भक्ति की एक विशाल और गहरी लहर दौड़ गई जिसका वर्णन निर्वाण साहब ने अपनी साखियों में किया है -

"गुरू नानक के संग में, बैठे निरबान आनंद,
वो दिन कैसे विसरे, प्रगटे ब्रह्मानंद ।[2]

अत: संत समागम से ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है । सत्संग से न केवल भक्ति के अनुकूल वातावरण मिलता है अपितु साधक की कुबुद्धि और संशय का अवसान होता है ।

इसी प्रकार का एक अन्य संत समागम का आयोजन भी हुआ था । कबीर साहब के आदेशानुसार संत कमाल अहमदाबाद आये और निर्वाण साहब के दर्शन के लिए सुरत पधारे । वहाँ "संत मेला" का आयोजन हुआ था । जिसमें सगुण और निर्गुण के भेदभाव को लेकर जो अनेक चर्चायें हुईं । इसमें निर्वाण साहब ने यह मत प्रगट किया कि संत सदा अभेदवादी रहते हैं वे भेदभाव से मुक्त रहते हैं। ब्रह्मस्वरूप संबंधी एक महान समस्या का जो समाधान इस समागम से हुआ उसका लाभ सामान्य जनता ने भी उठाया और भक्ति भाव से ओत-प्रोत होकर साधुओं का जय-जयकार करने लगी ।[3]

---

§1§ निर्वाण साहब - §पृ0 621§

§2§ निर्वाण साहब - §पृ0 627§

§3§ ज्ञानीजी द्वारा आयोजित मेले का ऐतिहासिक समर्थन हमें भरूच विषयक इतिहास ग्रंथों में मिलता है । इन ग्रंथों में संत कबीर और संत नानक के नामों से संबंधित स्थानों के विवरण से इस तथ्य का समर्थन होता है ।

साँई निर्वान बुझाइये, निरगुण सगुण की ओर
कमाल के दिल में लगी, यही हद की चोट 2

सत्संग सुखदायना, निरगुण सिगुण कहाँ भेद,
बुझो गति निरवान की, अवधू सदा अभेद ।

इसी प्रकार मीराबाई और ज्ञानीजी के साथ-साथ संत नामदेव का भी दर्शन और समागम, निर्वाण साहब के साथ होने की बात कही जाती है ।

गुजरात के साखिकारों, भक्तों एवं संतों की वानी सत्संगती की महिमा से भरी पड़ी है । इन्होंने संतसमागम को ब्रह्ममिलन का एक महत्वपूर्ण साधन माना है, समाज में सुबुद्धि और समत्वबुद्धि जाग्रत करते हैं । उन्हें सन्मार्ग पर ले जाते हैं । भावभक्ति की पराकाष्ठा इनकी साखियों में स्पष्ट है । संत दादू ने साधु संगति का महत्व प्रतिपादित यों किया है -

"दादू नेड़ा परम पद साधू संगति माँहि ।"[1]

अर्थात् साधु महात्माओं की संगति करने से परमपद बड़ी सरलता से मिल जाता है ।

अखा ने सतसंग को भवसागर से पार पाने का नौका कहा है ¾अ॰वा॰ पद ।47¾ सत्संग की सार्थकता गुणवान और मुमुक्ष साधक को मिलती है । जड़बुद्धि या "अपाहिज" मुमुक्ष के लिए सत्संग वैसा ही निरर्थक होगा जैसा कि पत्थर के लिए नदी का तट, आक, जवासा एवं सूखे ठूंठ के लिए वर्षा, मेंढ़क के लिए कमल दण्ड ¾अ॰व॰ पद ।6¾, मछली के लिए गंगा और बगुले के लिए मान सरोवर का वास आदि निरर्थक होते हैं । किन्तु सच्चे मुमुक्ष के लिए वैसा ही उपयोगी होगा जैसा कि नीम, आक, पलास आदि के लिए चन्दन, नदी नाले के लिए गंगा का प्रवाह एवं लौह के लिए पारस का स्पर्श आदि होते हैं ।[2]

¾1¾ दादू वाणी भाग-। - ¾पृ0 ।62¾

¾2¾ उदाहरणा

संत समागम की महत्ता को स्पष्ट करते हुए प्रीतम कहते हैं कि इस संसार रूपी भव सागर से पार पाने का एक मात्र नाव संतों का समागम हैं । इनके सम्पर्क में आने से शिष्य को अनेक अवकारों से मुक्ति मिल जाती है । अत: संसारिक प्रपंचों से मुक्ति के लिए संत समागम अत्यन्त आवश्यक है -

संत समागम किजीए, हृदय राखी भाव
कहे प्रीतम संसार मां, तरवानु ए नाव ।[1] ।

प्रीतम ने अपनी साखियों में संतों को हरि का लाड़ला कहा, "संत हरि के लाडिले", जो कि बैकुंठ में रहते हैं, "संत वासी वैकुंठ के" यहाँ तक कि"संत सगुण अवतार है" कह कर उनकी असली महत्ता का सम्यक् निरूपण किया है । उनका अभिप्राय है कि भक्त को अपनी ब्रह्म जिज्ञासा को शांत करने के लिए संतों का समागम करना चाहिये । इसी तथ्य की पुष्टि प्रीतम ने अपनी अनेक साखियों में बार-बार की है ।[2]

ज्ञानीजी ने भी अपनी साखियों में संत समागम को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । उनके अनुसार संतों के समागम से कितने ही पापी इस भवसागर से पार पा गये ।

संत संगत जानी कहे,
केते उतरे पार ।। ।3

संत संगत में सब बसे । औ बंधे सो होई ।।
ज्ञानी सहेजे ओधरे । पार पाहोंचे सोई ।। ।4

- हस्तलिखित - संत को अंग

----

(1) प्रीतम वाणी - (संत महात्मा नुं अंग) - (पृ0 56)

(2) प्रीतम वाणी - (पृ0 56)

संतों से जो भी भक्त प्रभावित हुआ वह उनके रंग में इस प्रकार रंग गया कि उस भक्त में और संत में यदि भेद करना कठिन हो गया। ज्ञानीजी ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि संत अपने ज्ञान दान के द्वारा भक्तों को धर्म संबंधी ज्ञान देते थे और उनकी शंकाओं का समाधान भी करते थे।

ज्ञानी जी ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि संतों की सेवा करने पर ही राम मिलते हैं और भक्तों को उसी संत की सेवा करनी चाहिए जिसके मन में राम का बास हो जो उनके मन की शंकाओं का, अंधियारा का नाश कर सके। इस भाव से संत समागम करने पर ईश्वर के प्रति भक्तिभाव में दृढ़ता आती है -

ज्ञानी संगत संत की जो कीसधी बीच होई,
जैसा ही अंग संत का तैसा ही यो जोई। 16

उदाधर्म सम्प्रदाय के जीवणजी महाराज ने भी संत समागम को अधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार संत समागम के बिना तीर्थ, तप आदि व्यर्थ हैं। "राम कबीर सम्प्रदाय" में इसी भाव को स्पष्ट किया गया है -

"जीवनजी ना उपदेश थी सत्संग अने हरि भक्ति बिनाना
जप, तप, तीर्थ, पूजा पात्रि बधु व्यर्थ छे,

जप तप तीरथ जीवणा, पूजा पाती प्रेम।
संत संगत हरि भक्ति विन उर दूजा न नेम।। (पृ० 149)

जीवनजी यहाँ तक कहते हैं कि सत संग के बिना सारा संसार डूब जायेगा क्योंकि अगर संसार में पाप का आधिक्य होगा तो स्पष्टतः वह क्षण स्थायी होगा-

संत संगत बिन जीवणा
बूड़ा सब संसार।।[1]

----

(1) उदाधर्म पंचरत्न माला - (पृ० 180)

3

ज्ञानी संगत कीजे संत की । जाके मन वसिराम ।।
संसा सबही काटके । सारे सबही काम ।। 57

संगत कीजे संत की ।। जाके मन बसिबास ।।
मीटै अंधीयारा जीव का ।। नीरमल होये उजास।। 58

उपरोक्त उक्तियाँ संतों के समागम की महिमा का बखान करती हैं और उनकी उपयोगिता स्पष्ट करती है ।

साखी एक छोटा काव्य रूप होने के कारण कहीं-कहीं उनमें तथाकथित भावों को समाहित करना असम्भव हो जाता है । अत: यही भाव पदों में भी जहाँ कहीं भी हमें मिला हमने अपने विषय में उन्हें समाहित कर लिया । अखा के कुछ पदों में उनके संत समागम विषयक भावनायें स्पष्ट और महत्वपूर्ण थी अत: विषयानुकूलता के कारण हमने उसे उद्धृत किया ।

आदर्श भक्तों के लक्षण :

साधना एवं उपासना में अन्य मार्गों की अपेक्षा, भक्तिमार्ग को श्रेष्ठ माना गया है । जैसा कि हमने अन्यत्र देखा है गुजरात के संतों ने ज्ञान से भक्ति को अधिक महत्व दिया है । इन्होंने इसके महत्व को केवल स्वीकार ही नहीं किया बल्कि इसका अध्यात्म मार्ग का सशक्त आधार माना है । अत: परमात्मा से साक्षात् सम्पर्क करनेवालों के लिए भक्ति अति आवश्यक है । अर्थात् भक्ति के पथ पर अग्रसर होनेवालों को हम भक्त की संज्ञा से अभिहीत कर सकते हैं ।

एक श्रेष्ठ भक्त के व्यक्तित्व तथा स्वरूप के विवेचन के लिए संतों ने अपनी साखियों आदर्श भक्त, संत आदि अंगों में आदर्श भक्त के लक्षणों की पुष्कल चर्चा की है । रवि साहब ने भक्त और भगवान की समानता स्पष्ट करते हुए लिखा है कि -

"रवी भगत संग भगवत का एक रूप ही जान" ।पृ0 410।

दोनों का रूप एक होने के कारण सच्चा भक्त भगवान का ही रूप होता है । संतों ने सच्चे भक्त की महिमा का गान इसलिए किया है क्योंकि इसके बिना भक्ति अधूरी है ।

निरांत ने सच्चे भक्त के लक्षणों को दर्शाते हुए उसी को सच्चा भक्त माना है जो "गुरू की कसणी" सह सके । क्योंकि वही "मारजीवा" (गोताखोर) की तरह ज्ञान को प्राप्त कर सकता है -

"गुरू की कसणी जो सहे,
जो मरजीवा सोई ।"

शिष्य के लक्षणों का स्पष्टीकरण करते हुए निरांत पुन: कहते हैं -

शिष्य सोई राखियें, गुरू सोई ज्ञान विवेक ।
कहे ज्ञानी गुरू शिष्य मिला, लहे ध्यान में एक ।।[1] 45

गरबीबाई के अनुसार सच्चा भक्त वही है जो अपने ईश्वर की तन, मन और धन से पूजा करता है अर्थात् उसे अपने ईश्वर के सिवाय और कोई दूसरा ध्यान नहीं रहता -

"मनसा वाचा कर्मणा, गोविंद के गुण गाय ।।[2] 5

इन्होंने हृदय की शुद्धता पर भी अधिक महत्व दिया है । हृदय शुद्ध हो तो विचारों में भी पवित्रता आती है । अत: हृदय को शुद्ध किये बिना राम को प्राप्त करना असम्भव माना है -

"हिरदा शुद्ध किया बिना, दुर्लभ मिल्वा राम ।" 3
"हिरदा शुद्ध किया बिना, सजते नहीं दरसन ।"

----

(1) गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी - (पृ0 216)
(2) गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी - (पृ0 241)
(3) गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी - (पृ0 241)

प्रीतम ने गुजराती में आदर्श भक्त के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए कहा है कि द्वेष, निंदा, मिथ्या भाषण, काम क्रोध मोह आदि भावों से रहित भक्त ही ईश्वर प्राप्ति के पथ का सच्चा साधक है । वह अपने उपदेश, अविचल वेण, जपे अजपा जाप आदि कर्मों के द्वारा अपने लक्ष्य स्थल की ओर मन्थर गति से अग्रसर होता है । ईश्वर की भक्ति के लिए प्रीतम द्वारा वर्णित गुणों से युक्त भक्त ही श्रेष्ठ है -

"आशा तृष्णा ईर्ष्या, निंदा नहीं लवलेश,
कहे प्रीतम आनन्द मा, आपे सत उपदेश ।।" 22

"मिथ्या भाषण नहीं करे, बोले अविचल वेण" 23

केवल आचरण ही नहीं प्रीतम शुद्ध भावनाओं को भी महत्व देते हैं -

निष्किंचन निर्वैरता बाह्यां-तर पवित्र
कहे प्रीतम शुद्ध भावते, गाय सुणे हरि चरित्र । 26

मानवीय अवगुणों को अजपा जाप के द्वारा शमन करने की बात प्रीतम ने कही है -

काम क्रोध मद मोह मां, पामे नहीं परिताप,
कहे प्रीतम शीतल रहे, जपे अजपा जाप ।।[1] 27

मनमें अहंकार की भावना होने पर हरि के भक्त हरि से दूर हो जाते हैं । अतः आदर्श भक्त के मन में अहंकार का वास न होना ही श्रेय है -

"सद विचार नित्य कीजिए, मूकि मन अहंकार ।।" ॥पृ0 59॥

यह कष्ट साध्य होने के कारण साधक को इस भाव से मुक्ति पाकर अग्रसर होना प्रीतम के अनुसार असम्भव लगता है, क्योंकि -

"कोई विरला जन वीसरे, अपकृत अहंकार ।" ॥पृ0 59॥

॥1॥ प्रीतम वाणी ॥पृ0 58॥

प्रीतम ने भक्त का जीवन मुक्त होना भी आदर्श भक्तों का लक्षण माना है । आसक्तियों से रहित भक्त ही सच्चा साधक है -

"जीवन मुक्त रहे जकतमां, वरते देह व्यवहार"

अतः देह व्यवहार से परे होकर हरि-भजन करनेवाला ही अपने ईश को प्राप्त करता है ।

जीवन मुक्त के लक्षण :

जीवनमुक्त सब दुःख रहित, एके आवरण नाहय,
कहे प्रीतम महामुक्त रहे, सदा समाधि माहय । (पृ0 98)

अतः प्रीतम महामुक्त की महिमा गान करते हुए कहते हैं -

कहे प्रीतम महामुक्त की,
महिमा अगम अपार ।"

दयाराम ने भगवत और भक्त दोनों को संगी कहकर भक्त के जीवन मुक्त होना आवश्यक माना है -

भगवत संगी भक्त हैं,
सो है जीवन मुक्त ।[1] 3।

देवा साहब ने उस भक्त को वैष्णव कहा है जो विषय वासना का त्याग करके मन को अपने वश में करके रखता है । इन वृत्तियों से हिन व्यक्ति को देवा ने पाखण्ड कहा है -

तजे विषे की वासना ।। मन को देवे दंड ।।
देवा वैश्नव सोई हैं ।। और सबे पाखंड ।।[2] 3।

---

(1) रसथाल (पृ0 234)

(2) रामसागर (पृ0 146)

मदिरा सेवन, मांस भक्षण करनेवालों को कभी ज्ञान प्राप्त नहीं होता क्योंकि इसके सेवन करनेवालों की सुवृत्तियों का नाश होता है और बुद्धि मलिन होती है । अत: आहार में भक्त को सात्विक प्रवृत्तियों का अनुकरण करना चाहिये -

मदिरा करै जे पान ।। आहार करै जो मंस का
ताके न उपजे ज्ञान ।। बुद्धि मलिन करै जानिए ।।[1] 29

रविदास ने "कसणी" सहने वालों को ही आदर्श भक्त माना है । जिस प्रकार कुंदन ताप से ही निखरता है सच्चे भक्त भी ईश्वर की करणी सहने पर ही आदर्श बनते हैं -

"कशणे सहे त्युं नीरमला, जैसे कुन्दन होय"[2] 32

रविदास के अनुसार इस प्रकार के भक्तों के लिए ही हरि अवतार ग्रहण करते हैं, भक्तों के भगवान की भावना को कवि ने स्पष्ट किया है -

रवीदास साधु कारणे, हरी धरे अवतार ।। 49 ॥पृ० 289॥

साखिकारों ने अपनी साखियों में आदर्श भक्त के गुणों का विवरण विभिन्न रूपों में किया है । कुछ संतों ने मानवीय गुणों को अधिक महत्व दिया है कुछ संतों ने आचरणों पर अधिक आलोकपात किया है । इन सबके मिश्रणों का सारांश यह होता है कि मनुष्य को जीवन निर्वाह करने के लिए कुछ आदर्श नियमों का पालन करना चाहिए जिससे समाज में, संसार में और उनके आन्तरिक परिवेश में एक स्वस्थ वातावरण की रचना हो सके । अत: सार्थक जीवन के लिए कुछ गुणों का निरूपण साखिकारों ने किया है जिसमें वे पूर्ण रूप से सफल रहे ।

॥1॥ रामसागर - ॥पृ० 146॥
॥2॥ रविसाहब नी साखियों - ॥पृ० 287॥

भक्ति :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहते हैं।"[1] हजारी प्र-साद द्विवेदी के अनुसार "भक्ति भगवान के प्रति अनन्यगामी एकान्त प्रेम का नाम है ।"[2]

गीता में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । विराट् रूप दर्शन के अन्त में इस रूप के दर्शन की साधना बतलाते समय श्रीकृष्ण ने स्वयं प्रतिपादित किया है कि यह देव-दुर्लभ-रूप न वेद, न तपस्या, न दान, न इज्या के द्वारा साक्षात्कार किया जा सकता है इसका एक मात्र साधन अनन्या भक्ति है । इसी के द्वारा जीव भगवान को प्रत्यक्ष देख सकता है, तत्वत: जान सकता है तथा दिव्यालोक में प्रवेश कर सकता है - भगवान के साथ ऐक्य भाव को प्राप्त कर सकता है ।[3]

श्रीमद भागवत के एक श्लोक के द्वारा गुजरात में भक्ति के विकास एवं उसकी परम्परा का स्पष्टीकरण होता है । भक्ति स्वयं नारद से कहती है -

"उत्पन्ना द्राविड़े चाअहम् कर्णाटके वृद्धिमागता
स्थिता किंचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णता गता ।"

अर्थात् मेरा जन्म द्राविड़ में हुआ, कर्णाटक में मैं फलीफूली, महाराष्ट्र में मैंने विहार किया और गुजरात में जाकर मैं वृद्धिगत हो गई । इससे यह प्रमाण होता है कि गुजरात में आकर भक्ति परिपुष्ट हुई । गुजरात के भक्तों ने निर्गुण-सगुण में कोई भेद भाव नहीं माना -

"निर्गुण सगुण नहीं कछु भेदा" कहकर संतों ने इसी भाव को स्पष्ट किया है ।

---

(1) चिन्तामणि भाग-1 - (पृ० 32)
(2) मध्यकालीन धर्मसाधना - (पृ० 142)
(3) भारतीय दर्शन - (पृ० 109)

9

गुजरात के संतों की साधना अखा जैसे ज्ञानी संत पुरुषों की साधना है । इन्होंने नीति तथा सदाचार को मूलमंत्र मानकर भक्ति को ब्रह्म प्राप्ति का साधन माना है । यहाँ पर नरसिंह, मीरा, दयाराम जैसे सगुण साधना के भक्तों के साथ-साथ दादू, निरांत, राजे, वस्ता, तेजा जैसे निर्गुण भक्त भी हैं । भक्ति के माध्यम से इन्होंने आत्मानुभव किया । सहजानुभूति के द्वारा भी इन्होंने परम तत्त्व के साथ एकरूपता स्थापित की है । भक्ति के निर्मल भाव से ही साधक अध्यात्म मार्ग में सफल होता है ।

यहाँ के साखिकारों ने उपनिषद ब्रह्मसूत्र, गीता (भागवत) के प्रमाण देकर भक्ति साधना के विभिन्न स्वरूपों एवं प्रकारों के लिए शास्त्रीय भूमिकाएं तैयार की और जीवन में उभरती हुई निराशा, दैन्य, आत्महीनता, पराजय तथा पलायन की भावना को उन्नयित कर उन्हें दिव्यता की ओर मोड़ा ।

भक्ति को अध्यात्म मार्ग का मूल मंत्र मानकर इसकी सहायता से ही भक्त ईश्वर के सान्निध्य का लाभ उठा सकता है । प्रीतम ने भक्ति की महिमा गान करते हुए कहा है -

भक्ति करे भगवान की, तजे विषय रसपान[1] ।

भक्ति की पराकाष्ठा में पहुँचे हुए कुछ आदर्श भक्तों का उल्लेख भी प्रीतम ने अपनी साखियों में किया है । इसके अन्तर्गत प्रलहाद, विभिषण, पाण्डव भक्त ध्रुव आदि मुख्य हैं । प्रल्हाद ने अपने भक्ति के बल पर हरि को इस धरातल पर उतरने के लिए बाध्य किया था -

"भक्ति करि प्रलहाद, हरि धर्मो नरसिंह रूप"

भक्तिभाव से विभिषण के पुकारने पर राम ने दुष्टों के नाश के लिए धनुषबाण को धारण किया -

----

(1) प्री·वा· भक्ति नु अंग (पृ० 66)

भक्ति विभिषण ने करी, साचा हृदय साथ,
कहे प्रीतम रावण हण्यो, रूप धरी रघुनाथ

इसी प्रकार पाण्डव और ध्रुव का भी उल्लेख कवि ने अपनी गुजराती साखियों में किया है । देवों को भी भक्ति प्रिय है । वे भक्त के आव्हान की अवहेलना नहीं कर सकते -

"दैव कु भक्ति प्रिय," कह इसी तथ्य की पुष्टि प्रीतम ने की है ।

हिन्दू धर्मशास्त्रों में भक्ति के 19 प्रकार बताये गए हैं उनमें पाँच मुख्य हैं । माधुर्य, कान्ता, वात्सल्य, सख्य और दास्य । गुजरात के भक्तों में दास्य भाव की भक्ति की प्रधानता है ।

इष्टदेव अथवा आराध्य को स्वामी और स्वयं को उसका दास या सेवक मानकर की जानेवाली भक्ति ही दास्य भक्ति है, उदाधर्म के जीवणदास के मतानुसार संसार को पार करने के संकल्प से युक्त होकर प्रीतिपूर्वक जो राम का स्मरण करता है उसी भक्त को दास कहा जाता है ।

"भवसागर डाहा के जीवणा । नाम स्मरण विश्वास ।।" 41 ‡पृ0 112‡

जीवण ने कहीं कहीं वात्सल्य भाव से विभोर होकर भी कहा है -

माता हमारे जानकी । पिता हमारे राम । 49

उन्होंने स्वयं को उनकी संतान कहकर, परमात्मा को पिता और माता माना है ।

जीवण के दास्य-भक्ति की पराकाष्ठा तो चरम सीमा पर पहुँच जाती है । जीवण कहते हैं - "जगत दुःखी सब जीवणा । सुखी हरि के दास" 52 ‡पृ0119‡

निर्गुण के आराधक अखा ने भक्ति को पक्षी माना है जिसकी ज्ञान और वैराग्य दो पाँखें हैं ।

भक्ति में चातुरी, छल, कपट आदि के निवारण को स्पष्ट करते हुए अखा ने "भोरी भक्ति" करने का उपदेश दिया है। अतः भक्ति को विरह और प्रेम से भी महान माना है -

अखा तु भोरी भक्ती करण जो साँई रिझाया चाहे।
पंडीत कला में मत पड़े बुध्य अक्षर में जाय।[1]

उनके अनुसार पंडित के नियम कानून शास्त्रों के विधि विधान को त्याग कर पवित्र मन के भोलेपन के साथ ईश्वर की आराधना करने पर वह अवश्य मिलेगा। उसके मिलने पर अज्ञान रूपी माया रूपी लकुटी डाल कर ईश्वर में रम जाना चाहिये -

रत्य लागी रामसुं प्रीतम मिलिया सेज।
अखा लकुटी डार दे जब नेनु आया तेज ।।[2] ।3

गुजरात का समस्त वैष्णव काव्य भक्ति की व्यापक आधार भूमि पर विकसित हुआ है। प्रधान वैष्णव कवियों ने भक्ति के महत्व को स्वीकार ही नहीं किया अपितु स्पष्ट और सशक्त शब्दों में उसका व्याख्यान और गुणगान भी किया है। नरसिंह मेहता ने इसी भाव से विभोर होकर एक पद में कहा है -

भक्ति विना जे जन जीवे,
ते केम कहिये मानव देह रे। पद 55

सगुणमार्गी दयाराम ने कहीं कहीं भक्ति को नौका कहा है जो पवित्र और पापियों का उद्धार करती है -

"भक्ति नौका तारे सर्वने"

---

§1§ अक्षय रस §भोरी भक्ति अंग§ पृ० 209

§2§ अक्षय रस पृ० 210

दूसरी जगह कवि ने भक्ति को मणि कहा है और ज्ञान को दीप, दोनों अंधकार का नाश करते हैं । परन्तु एक दीप हवा के सामान्य झोंके से बुझ जाता है जबकि दूसरे मणी का प्रकाश कालान्तर तक रहता है । इसी प्रकार कवि ने ज्ञान से भक्ति की महत्ता को अधिक बताया है ।[1]

कवि ने भक्ति की महत्ता को दर्शाते हुए भक्त के चार गुणों को मुख्य माना है । ‖1‖ भाव, ‖2‖ भक्ति, ‖3‖ दीनता और ‖4‖ पुर दुःखों को हरण करनेवाला । इन गुणों से युक्त भक्त ही हरि के वास्तविक भक्त हैं । जिस प्रकार बाग में सुगन्ध सबको आकर्षित करती है उसी प्रकार हरि के भक्त ईश्वर के प्रति अनुराग के कारण सबको अपने प्रति आकर्षित करते हैं -

> चार चिन्ह हरि भक्त के, प्रगट हो कही देत,
> भाव भक्ति अरु दीनता, पर दुःख को हरी लेत । 221
>
> सबको मन आकर्षही, जस सुगन्ध को बाग,
> तस हरिभक्त ज्युं दारवहि, अपनो परम अनुराग ।[2] 222

भक्त कभी भी माया के जाल में नहीं फंसता इसी भाव को कवि स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

> भक्त ते भक्ति स्वरूप छे, तेने माया ना पाडे लेश, । ‖पृ0 149‖

भक्ति दो प्रकार की होती है ‖1‖ साधनारूपा, ‖2‖ साध्य रूपा । साधना भक्ति अर्थात् श्रवण से आत्म निवेदन तक 9 साधनों से युक्त और काव्यभक्ति अर्थात् प्रेम लक्षणा भक्ति, साधना भक्ति को मर्यादा भक्ति, और साध्य भक्ति को हम पुष्टिभक्ति भी कहते हैं । इसका दूसरा नाम अनुग्रह भी है । यह वल्लभाचार्य

‖1‖ भक्त कवि दयारामभाई नु जीवन दर्पण - ‖पृ0 148‖

‖2‖ रसथाल - ‖पृ0 255‖

का भक्तिमार्ग है । दयाराम भी पुष्टि भक्ति में दीक्षित थे । कृष्ण भक्ति दयाराम के काव्य की आत्मा थी ।[1]

सौराष्ट्र के जेठीराम नाम भक्त ने भक्ति को पुष्प और उसकी सुगन्ध कहा है अर्थात् भक्ति पुष्प जैसी कोमल और आल्हादप्रद है ।

प्रेम :

सूफीवाद के प्रभाव के कारण गुजरात के साखिकारों की साखियों में प्रेम और विरह की भावना को समान रूप से देखा जा सकता है । संतों का भक्तिमार्ग सूफियों के प्रेम मार्ग से बहुत प्रभावित है । सूफी प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता मादकता और सरसता है ।[2]

प्रीतम ने प्रेम को खांडा की धार कहा है इसके ऊपर चलकर कोई विरला ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है ।

"प्रेम पथ अति कठिन है, जैसे खांडा धार ।"

प्रेम सुधारस पान करने के लिए भक्त को अपने तन, मन और शीश तीनों का मोह त्याग कर अर्थात् अहंभाव को त्याग कर ईश्वर के प्रति निःशेष भक्तिभाव से अपने प्राणों को भी अर्पण करना पड़ता है -

प्रेम सुधा रस पीजीऐ, सोपी तन मन शीश
कहे प्रीतम प्रेमी मलें तो प्राण करूं बक्षिस ।[3] ।4

प्रीतम के अनुसार ऐसा प्रेम केवल ब्रज की नार ही कर सकती है । उन्होंने सुन्दरिया श्याम के प्रेम में तन मन और धाम तीनों छोड़ दिया था -

सत्य प्रेम ब्रज नार की, वीसरी तन मन धाम,
कहे प्रीतम प्रेम करी, परसे सुंदरश्याम । 8

---

(1) भक्त कवि दयाराम नाईक जीवन दर्पण - (149)
(2) हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - (पृ0 549)
(3) प्रीतम वाणी (पृ0 69)

द्रौपदी के प्रेम से पुकारने पर प्रभू उसकी सहायतार्थ तुरन्त आ जाते हैं -
"प्रेमे ॿ पोरारी द्रौपदी" 25

प्रभु को मन में बसाने के कारण गोपियों के लोक लाज, व्यवहार सब बिसर जाते हैं -

लोक लाज व्यवहार की नहीं खबर लगाद
कहे प्रीतम प्रभू मन वसे, भूल गये संसार ।[1] 9

"प्रेमे पोकारी द्रौपदी" कहकर प्रेम के वशीकरण वृत्ति को प्रीतम ने स्पष्ट किया है अर्थात् प्रभु भक्त के प्रेम से पुकारने पर -

"रथ हांक्यों जदुवीर" कहकर "भक्तों के भगवान" उक्ति को स्पष्ट किया है । ॿपृ0 70ॿ

वस्ता भी प्रेम भक्ति को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं -

"प्रेम भक्ति निशदिन जायें अवर आश निराश"[2] 80

नरसिंह, मीरा, दयाराम की तरह राजे भी एक कृष्ण भक्त कवि थे । उन्होंने कृष्ण की गोपीभाव से आराधना की । गोपीमय होकर कृष्णप्रेम की और कृष्णभक्ति की अनेक साखियाँ लिखी । गुजराती में राजे ने प्रेम के रसात्मक भावों का समावेश अपनी साखियों में करते हुए कहा है कि राजे अपने रसिया के लिए तड़प रहा है -

प्रेम करीने प्रीछवे, सहु ने थाए संतोष ।[3] 5

ॿ1ॿ प्रीतमवाणी - ॿपृ0 69ॿ
ॿ2ॿ हस्तलिखित - वस्ता नी साखियो
ॿ3ॿ राजेभगत - ॿपृ0 3ॿ

5

उदाधर्म के जीवणदास का कहना है कि बिना प्रेम के भक्ति सम्भव नहीं है क्योंकि इस दुनिया को भूलने पर ही ईश्वरप्रेम पाना सम्भव है । अत: भक्त को सब भूलकर ईश्वर के प्रेम में निमग्न हो जाना चाहिए । जीवणदास ने प्रेम को ईश्वर तक जाने की सिढ़ी मानी है -

"प्रेम प्रीति बिन जीवणा । भक्ति न आवे हाथ ।। 46
- उदाधर्म §पृ0 139§

विरह :

संतों के प्रेम का महत्वपूर्ण पक्ष विरह तत्व है । ईश्वरीय विरहभाव को संतों ने अधिक महत्व दिया है । इस तत्व को भारतीय आचार्यों और सूफियों दोनों ने अधिक महत्व दिया है । महर्षि नारद भक्ति में विरह को आवश्यक मानते थे । सूफियों की साधना का तो वह प्राणभूत तत्व है ।[1] प्रेम की पराकाष्ठा का परिचय हो वहीं होता है जहाँ विरह की पीड़ा है । गुजरात के प्राय: सभी संतों ने "विरह अंग" पर साखियाँ लिखी है ।

प्रीतम के अनुसार जब तक विरह नहीं हो तब तक हरि नहीं मिल सकता। विरही को संसार विष की तरह लगता है । माया मोह से पूर्ण इस संसार में वह हरि से मिलने के लिए तड़पता रहता है -

जब लगी ब्रेह न उपजे तब लगी है हरि दूर । ।

विरही कु विष सरीखा संसारिका नेह
कहे प्रीतम खोटा लगे बरखा ऋतु विन मेह । 2
- ब्रेह नु अंग - §पृ0 76§

---

§1§ हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - §पृ0 550§

प्रीतम ने ब्रज की नारियों का उदाहरण देकर कहा कि वही सच्चा प्रेमी है जो कृष्ण के विरह में तड़प रही हैं । अपने घर परिवार, लोक लाज की परवाह न करके कृष्ण के प्रेमाकर्षण में सब छोड़कर चली जाती हैं, उन्हें न अपने कुल की मर्यादा का ध्यान रहा न समाज का । उनके लिए तो सम्पूर्ण विश्व कृष्णमय है । "सांचो प्रेम बृजतार की, छोड़ चली परिवार" कहा है ।

विरह की पराकाष्ठा पर पहुँचने पर मृत्यु का भय भी नहीं रहता है, विरही न अग्नि से डरता है न जल से ।

"विरही डरे न मरन से, चले अगन जल मांही ।" 25

प्रीतम ने सांगरूपक के द्वारा विरह और विरही की तुलना दीपक और तेल से की है । इस तन रूपी कोड़िया में विरह रूपी तेल जल रहा है, जिसमें प्राणों की बाती है जो पति मिलन के लिए दिन राज जल रही है -

विरह तेल तन कोड़िया, प्राण बनातुं बात,
कहे प्रीतम पति कुं मिलन, जारत हुं दिनराज । 7 ॥पृ0 76॥

राजे को यह संसार हरि के बिना सूना लगता है । भक्त की अभिलाषा है कि उसे केवल उसके आराध्य हरि का ही संग चाहिए अन्य किसी का संग भी उसे वह सुख नहीं दे सकता जितना उसे हरि का संग दे सकता है । विरह प्रेम की भक्ति की कसौटी है उसी पर कस कर ही भक्ति की पराकाष्ठा परखी जा सकती है ।

सूना सब संसार ए तम वीन लागे नाथ
राजे कु हरि तम वीना गमे न दूजा साथ[1] ।30

विरह को भक्ति की पराकाष्ठा दर्शाते हुए दयाराम लिखते हैं -
"जितना ही भक्त हरि के प्रेम में रमेगा उसकी तड़प उतनी ही बढ़ेगी"

॥1॥ राजे कृत काव्य संग्रह ॥पृ0 227॥

"अधिकाधिक हरि प्रेम ने" कहकर दयाराम प्रेम की अधिकता दर्शाते हैं और "दिन दिन छिन छिन होत है"[1] कहकर विरह में भक्त का तड़पना स्पष्ट करते हैं ।

विरह की महत्ता बताते हुए जीवणदास कहते हैं जिस घट में विरह का वास न हुआ हो वह घट श्मशान की तरह है । विरह की मीताक्षरी व्याख्या करते हुए उनका कहना है कि वरह वहाँ होता है जहाँ प्रेम हो और इन सबका सम्बन्ध भक्ति से है । अत: -

जा घर विरह न संचरे । ते घर सदा मशान ॥पृ0 126॥

अर्थात् विरहावस्था भक्तों की आराधना का विशेष अंग है ।

वस्ता अपने प्रभु के दर्शन और मिलन के लिए इस प्रकार आतुर है कि विरह की ज्वाला से उनका रोम-रोम जल रहा है । यह ज्वाला तभी शान्त होगी जब प्रभु से उनका मिलन होगा अन्यथा इस विरह अग्नि में जलना ही उनका ध्येय बन गया है -

रोम रोम में विरह लगा अन्य कुछं न सुहाय
वस्ता विस्वभर जन मले तन मन शितल थाय । 36
- हस्तलिखित - वस्ता नी साखियो ॥विरह को अंग॥

अखा ने भी विरह को महत्व दिया है । भक्ति में विरह की अनिवार्यता को दर्शाते हुए अखा कहते हैं कि विरह में जल कर तन और मन तृण की तरह हो जाता है -

जब विरहा लाग्या अखा तब तन मन त्रण समान ।[2] ॥

॥1॥ अधिकाधिक हरि प्रेम में, जीनको है सर्वंग
दिन दिन छिन छिन होत हैं, कृष्ण कीर्तन रंग । ॥6
- रसथाल ॥पृ0 243॥

॥2॥ अ0र0 ॥पृ0 199॥

भक्ति और उसमें प्रेम और विरह के महत्वपूर्ण तत्वों की साखिकारों ने हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में अपनी साखियों में चर्चा की है । उपरोक्त उदाहरणों को देखकर लगता है कि वे इस कार्य में पूर्णतः सफल रहे हैं ।

नामजप :

गीता में भगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है कि - "यज्ञानाम जप यज्ञोऽस्मि" नाम स्मरण अर्थात् नाम जप को सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि वह साक्षात् परमात्मा का स्वरूप है ।

नामजप की प्रथा प्रत्येक सम्प्रदाय में है । इस्लामधर्म में भी नामजप को प्रधानता दी गई है । दिन में पाँच नमाज पढ़ना तथा तसबिह लेकर खुदा का नाम स्मरण करना अनिवार्य माना गया है । बौद्ध, जैन यहाँ तक कि पारसियों में भी प्रार्थना, नामजप, माला फेरना आदि को ईश्वरोपासना का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है ।

ईश्वर के नामजप को संतों ने आराधना का मूलमंत्र माना है । सूर और तुलसी की भाँति गुजरात के कवियों ने भी स्थान-स्थान पर नाम की महत्ता का भावपूर्ण निरूपण किया है । इनके अनुसार राम का नाम स्मरण करने से सांसारिक बाधाओं से मुक्ति तो मिलती ही है, ईश्वर के प्रति आकर्षण भाव उत्पन्न होता है। जीवन मोक्षगामी होता है इस प्रकार राम के नाम जप से इहलोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं ।

साखिकारों ने नाम रस का वर्णन प्रेमरस और रामरस के रूप में किया है । समस्त तीर्थों और वेदशास्त्रों में पुण्य भी रामनाम के पुण्य के बराबर नहीं हो सकता।

"वेद पुराण सब देखीया सबमें ऊँचा राम"

कहकर दादू ने नामजप को अधिक महत्व दिया है ।

"राम जपोरी रावरा, अवसर वीत्यो जाय
"तेजा" तन छूट जायेंगे, तब ही तु पछताय ।"

कहकर तेजानंद ने रामजप की महिमा प्रतिपादित की है । राम नाम के समान न कोई मूल्यवान तत्त्व है, न हो सकता है ।

तेजा ने राम नाम को एक पल भी न विसरने को अनिवार्य बताया है -

पल एक राम न विसरे,
जपीये श्वासों श्वास

प्रत्येक श्वास में राम का नाम जप करनेवाले को ही सच्चा भक्त माना है । राम का नाम न जपने वाला इस दुनिया में होता हुआ जायेगा । तेजा इस जग को इसलिए झूठा कहते हैं क्योंकि इसमें हरि का नाम जपनेवालों की कमी है । तेजानंद का कहना है कि-

"जूठे जग में आयके, तेजा भये बदनाम ।" ।

अवसर बीत जाने पर पछताने के सिवाय और कोई दूसरा रास्ता नहीं होगा क्योंकि समय के साथ-साथ तन भी क्षीण होता जा रहा है और काल भी समीप आ खड़ा है । जीवन के इस गहन तथ्य को समझने पर भक्त को अन्य कार्य छोड़कर केवल राम नाम पर ही आश्रित होना चाहिये ।

"राम जपोरी रावेरा, अवसर वीत्यो जाय
"तेजा" तन छूट जायेंगे, तबही तु पछताय ।।" 26

देवा साहब ने इस संसार से मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय राम का नाम माना है । उनके अनुसार कीट पतंगों की भी सद्‌गति हो जाती है । अगर प्रभु का नामजप करें तो । जगत से मुक्ति पाने का उपाय नामजप है -

"कीट पतंग पावे गती ।। राम नाम सुनी कान ।।
देवा हरि हरि जो कहें ।। तरही सकल जहान ।। 32

निरांत ने गुजराती साखी में नाम जप की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि इस संसार रूपी भवसागर से नाम-जप के बिना कोई पार नहीं पा सकता है । इस भवसागर को कवि ने प्रपंच रूप माना है और इससे उबरना भी अनिवार्य है । इस कार्य में सबसे समर्थ और सहायक प्रभू का नाम को मानकर इसे

बहु बली कहा है । इस नाम की महिमा ही इस संसार से पार दिलाने में सहायक है -

नाम विना कोई नव तरे, भवसागर नी माहयं
निरांत नाम बहुबली, ज्यां ज्यां देखु त्यायं ।[1] 6

दादू ने भी राम नाम की महत्ता को माना है । भक्त का मन इस भवसागर में भटकने के कारण प्रभु की आराधना में विघ्न होता है और वह दुःखी रहता है । अतः -

दादू मेरा जिव दुःखी, रहै न राम समाई ।। 5

कहकर जीव के कष्टमय जीवन की व्याख्या की है और इससे उबरने के लिए -

"राम नाम रोक्या रहे, नां ही आन उपाई"[2] 6

संत निर्वाण साहब ने अपनी साखियों में ईश्वर के नाम जप को अधिक महत्व देते हुए यह स्पष्ट किया कि इस जग में हरि का नाम जप करने से ही मस्त रहा जा सकता है । नाम जप करने का सद उपदेश निर्वाण देते हैं -

"यारी लग गई नाम से, मनवा हुआ मस्तान" ।।

रवि साहब ने नाम की महत्ता बताते हुए गुजराती साखी में लिखा है कि भक्त को राम के नाम का स्मरण इस प्रकार करना चाहिये कि सम्पूर्ण जीवन में प्रभु के नाम की महिमा विद्यमान रहे । जहां तक श्रवण और वाणी का सम्बन्ध है वहां राम प्रे के नाम की अधिकता तो होनी चाहिये अपितु भक्त को राम की छबि अपने मन में इस प्रकार समा लेनी चाहिये कि उसे चतुर दिशा में राम नजर आये-

---

§1§ निरांत काव्य - §पृ0 1§

§2§ संक्षिप्त संत सुधा - §पृ0 286§

रसनायें संभारीये, श्रवणे सुणिये राम,
नयने निरखो राम कु, रैवीदास ऐही काम । 17

रवीदास रसाना राम कहै, मीटे देह का भान
ने तु नेह लगाविये, नाशा अग्रे ध्यान । 18

– रवी भाण सम्प्रदाय नी वाणी (पृ0 252)

रविसाहब ने राम के नाम जप की महत्ता को जनता के समक्ष प्रचार हेतु गुजराती भाषा में इसकी रचना की है । ब्रजभाषा में भी इसी भाव को कहीं-कहीं कवि ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है । कवि ने "रसना" को न केवल भोजन ग्रहण करने का ही यंत्र माना है बल्कि उसे राम-नाम के लिए भी आवश्यक कहा है । "रसना" जीव को शिव बनाने में सहायक हो सकती है । इस तथ्य को कवि ने अपनी साखियों में स्पष्ट किया है ।

रवीदास रसना सो भली, राम बीन नव केह
राम वीना जे ओचरे, जाणु धमणु धमेह ।[1] 14

जिस प्रकार लुहार की धौकनी का उपयोग केवल वायु के लिए किया जाता है उसी प्रकार इस मानव शरीर का प्रयोग भी केवल राम नाम के लिए ही होना चाहिये । कवि ने मानव शरीर को लोहार की "धमण धमेह" कहा है । इसी भाव को स्पष्ट करने के लिए कवि ने ~~प्रायः~~ गुजराती साखियों में विभिन्न शब्दावली तथा भावों के प्रयोग किए है –

पहेली बांधे पीठका, राम रटन लहेवाय,
हर दे नाभी होद रखी, उलट सुनचड़ जाय ।[2] 25

"नाम बीन जो कछु करे, ते सब भ्रम भूलान"

---

(1) रवीदास नी साखियों – (पृ0 252)

(2) रविभाण सम्प्रदाय – (पृ0 252)

कहकर ज्ञानीजी ने नाम के महात्म्य का बखान किया है । ज्ञानी जीं इस जग में राम नाम के बिना कुछ नहीं जानते हैं क्योंकि इस नाम की समानता कोई नहीं कर सकता ।

कवि ने वेद और पुराणों का उल्लेख करके स्पष्ट किया है कि उनमें भी केवल राम के नाम की महत्ता का ही वर्णन है । अतः केवल राम का नाम ही सत्य है ।[1]

प्रीतम ने मन की ग्रन्थियों और मोह को काट डालने का एक मात्र उपाय हरिस्मरण बताया है । ग्रन्थियों के नाश होते ही त्रिभुवन के नाथ का दर्शन होना सम्भव है । इस संसार के बन्धन का मोह केवल ईश्वर के नाम जप से ही कट सकता है । अतः माया मोह के जाल से खुद को मुक्त रखने का एक मात्र उपाय नाम जप ही है ।

मोह टले ग्रन्थि गले, मले त्रिभुवन नाथ
कहे प्रीतम फेरो फले, हरि स्मरण हय साथ ।[2] ।।

उपरोक्त साखियों में नाम जप की विस्तृत व्याख्या देखकर यह स्पष्ट होता है कि गुजरात के साखिकारों ने हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं में ईश्वर के नाम स्मरण का उपदेश दिया है । इसे अगर ईश्वर तक पहुँचने की सीढ़ि कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । अतः पवित्र मन से ईश्वर को पुकारने पर या उनका यशगान करने पर तथा भजन कीर्तन में रमे रहने वाले भक्त का उद्धार होना निश्चित है । निष्कर्षतः नाम जप की महिमा अपार है ।

----

(1) राम नाम ज्ञानी कहे । त सन और न कोय
मन ही में सूमरिये । आवागमन न होये । ।4

नाम बीन जो कछु करें । ते सब भ्रम भूलान ।
ज्ञानी हरि के नाम बीना । में न जान कछू आन। ।

नाम बराबर कछु नहीं । जोऊ वेद पुरान ।
और धर्म सब कर्म है । राम नाम सत जान ।। 2
- हस्तलिखित - नाम महात्म्य को अंग

(2) प्रीतम वाणी - (पृ0 85)

<u>योग</u> :

अध्यात्म साधना में योग का महत्वपूर्ण स्थान है । प्राचीन ऋषियों में प्रत्याभिज्ञान की, अन्तर्दृष्टि की उत्पत्ति में योग ही प्रधान कारण था । कठोपनिषद ‡ 9 - 2 - 12 एवं 8 - 3 - 10‡ तथा गीता ‡6 - 20‡ में योग को "चित्त - वृत्ति निरोध" का समानार्थी माना गया है ।

योग का सामान्य अर्थ साधना लिया जाता है । धर्म प्रचारकों ने और दार्शनिकों ने योग की महत्ता को स्वीकार किया है । बौद्ध धर्म के पाली त्रिपिटकों में योग की प्रक्रिया का वर्णन है । महावीर स्वयं योगी थे और जैन धर्म में योग का विवेचन पर्याप्त मात्रा में किया गया है ।

तंत्रों में योग का महत्वपूर्ण स्थान प्रसिद्ध ही है । गोरखनाथ के नाथ सम्प्रदाय को "योगी सम्प्रदाय" के नाम से पुकारा जाता है । नाथ पंथी सिद्ध "हटयोग" के परमाचार्य थे ।[1]

श्री मद्भागवत् में तथा कुछ प्राचीन ग्रंथों में योग का सामान्य अर्थ साधना के रूप में ही लिया हुआ है । इस ग्रन्थ में अठारह प्रकार के यमों की चर्चा की गई है । योग अनेक प्रकार के हो सकते हैं परन्तु मध्य युग में हठयोग , लययोग, मंत्रयोग और राजयोग का ही प्रचार अधिक था ।

गुजरात के संतों ने भी योग को अध्यात्म के पथ का एक विशिष्ठ अंग माना है । संत प्रीतम ने योग की महत्ता को अध्यात्म का साधन कहकर अपने जीवन काल में इसका प्रयोग करते थे ।

डॉ० अश्वीनभाई पटेल के मतानुसार प्रीतम अष्टांगयोग के षटकर्म से भली-भांति परिचित थे । संदेसर मंदिर के एक छोटे से घर में बैठकर प्रीतम योगासन, धौति, नेति, ध्यान आदि साधनायें करते थे । ‡महिना 8 वा प्रीतम वाणी‡

---

‡1‡ भारतीय दर्शन - ‡पृ० 366‡

उन्होंने पद्मासन, सिद्धासन, सतासन को अधिक महत्व दिया तथा प्रणायाम योग समाधि को आत्म ज्ञान प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण माना है ।[1]

योग समाधि जे करे, साधे आठे अंग,
प्रीतम प्रवृत्ति तजे, प्रगटे पूरण रंग । ।

आसन की महत्ता दर्शाते हुए प्रीतम कहते हैं -

"आसन प्राणायाम प्रतिहार करे"

अत: प्राणायाम आदि की महत्ता केवल साधक ही समझ सकते हैं क्योंकि योगी को ही इनकी प्रवृत्तियों का ज्ञान होता है ।

धोती, नेती, बस्ती, भ्रमरी, नोली त्राटक ध्यान
प्रीतम खटकर्म जोग के समझे साधनावान । ।।

- प्रीतम वाणी (पृ0 62)

प्रीतम आसनों की संख्या चौरासी लाख बताते हैं और उसमें से मुख्य केवल 84 आसनों को ही मानते हैं । इनमें भी सोलह आसनों का ही महत्व प्रीतम के अनुसार अधिक है ।

चोरशी लाख आसन योग के तामे चोराशी सार
तामे सोलह प्रसिद्ध है, प्रीतम हृदे विचार । 22

सिद्धासन, पद्मासन और सतासन की विशेषता दर्शाते हुए प्रीतम निर्देश देते हैं -

"कहे प्रीतम ए तीन में, पद्म, सिद्ध सत कीन । 23 -प्रीतम वाणी (पृ. 62)

---

(1) "प्रीतम अष्टांगयोगना खटकर्म चिधे छे । संदेसर मंदिर ने एक भोचरू हतु जे अत्यारे विस्मार हालतमां छे । मंदिर नाम गर्भगान थी उगमणे अड़ीने ज हतु । एमां बेसी प्रीतम योगासनों अने धोति, नेति, ध्यान-साधनसांध्ये (महिना 8 प्री0वा0) जता । 84 योगासनो अनुभव कर्यापछी ते सोल अने पछी बार ऊपर भार मुके छे ते छेवटे मात्र त्रण आसनों, पद्मासन, सिद्धासन, सतासन ने अति महत्व ना गणावे छे ।

- प्रीतम एक अध्ययन - (पृ0 33।)

हठयोग :

योग के अन्तर्गत संतों ने हठयोग की भी चर्चा की है । इसके आदि उपदेष्टा "आदिनाथ" अथवा स्वयं शिव माने गये हैं । परवर्ती आचार्यों में मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरखनाथ मुख्य माने गये हैं । इस साधना के चार मुख्य अंग है - ॥1॥ यम-नियम एवं आसन, ॥2॥ षटकर्म एवं प्राणायाम, ॥3॥ नाड़ी विचार एवं मुद्रा और ॥4॥ नादानुसंधान माने गये हैं ।

यम नियमों की संख्या दस मानी गयी है । आसनों की संख्या चौरासी। इनमें चार आसन मुख्य माने गये हैं जो ॥1॥ सिद्धासन, ॥2॥ पद्मासन, ॥3॥ उग्रासन, ॥4॥ स्वस्तिकासन के नाम से प्रसिद्ध है । इनमें सिद्धासन को मुख्य माना गया है ।

प्राणायाम का महत्व योगासन में प्रधान है । प्राण, अपान, समान वायुओं से मन के निरोध करने के अभ्यास को प्राणायाम कहते हैं । प्राणायाम के तीन अंग बताये गये हैं - ॥1॥ पूरक, ॥2॥ कुम्भक, ॥3॥ रेचक

प्राणायाम का लक्ष्य सुषुम्ना को खोलकर प्राण को उसके माध्यम से ब्रह्मरंध्र तक पहुँचाना होता है । इस प्रक्रिया द्वारा इन्द्रियाँ बाह्य विषयों को त्याग कर अन्तर्मुखी हो जाती है ।

नाड़ियों के द्वारा ही वायुओं का संचार होता है । अत: साधना में नाड़ी महत्वपूर्ण स्थान रखती है । हठयोग प्रदीपिका के अनुसार साढ़े तीन लाख एवं कुछ अन्य योगाचार्यों के अनुसार दो लाख नाड़ियाँ निकलकर हमारे शरीर में व्याप्त हैं । कुंडलनी को जाग्रत करने के लिए नाड़ियों के द्वारा, मुद्राभ्यास को आवश्यक माना गया है । मुद्राएं दस हैं । इनकी साधना से साधक को अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । खेचरी मुद्रा मुद्राओं में मुख्य है - इस मुद्रा को स्पष्ट करते हुए प्रीतम कहते हैं -

करे अगोचरी पैंगड़ा, खेचरी पर अवसार
प्रीतम लगाय ग्रेहे भूचरी, खेले चांचरी वार । ।4

- प्रीतम वाणी - ॥पृ0 62॥

<u>नादानुसंधान</u> :

जागृत कुंडलिनी के सहारे सुषुम्ना मार्ग के छह चक्रों और तीन ग्रंथियों को भेद करके, योगी प्राण वायु को ब्रह्मरंध्र में स्थित करता है । कुंडलिनी के जागृत होकर ऊपर उससे जो स्फोट होता है उसे "नाद" कहते है । नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का व्यक्त रूप बिन्दू कहलाता है । यह बिन्दू तीन प्रकार का होता है - ॥1॥ इच्छा, ॥2॥ ज्ञान और ॥3॥ क्रिया । "नाद" शब्द ब्रह्म का वाचक है ।[1]

रवि साहब ने कुंडलिनी के जागृत होकर योगी के नाद स्वर श्रवण को स्पष्ट करते हुए कहा है -

स्वपन नींद दोनु मीटे, जाग्रह रही सदाय,
बाहेर के पट मुंद लिए, भीतर पट खुलाई ।[2] 7

अन्दर के पट खुल जाने पर परमात्मा से मिलन का द्वार खुल जाता है -

"बहो वीध बाजा वागीया" कहकर कवि ने अनहद, नाद के नाद-स्वर को स्पष्ट किया है ।

<u>ध्यान</u> :

गुरू-प्रदत्त मंत्र या नाम का अखण्ड जप, ध्यान का आवश्यक अंग माना जाता है । नाम जप श्वास-प्रश्वास की क्रिया के साथ सोहं-हंस के रूप में स्वत: होने लगता है तो अजपा जाप के नाम से जाना जाता है ।

प्राण अपान साधना में अजपा-जाप का बहुत महत्व है । योगमार्तंड ग्रंथ में इसके महत्व प्रतिपादित करते हुए लिखा है - अजपा जाप गायत्री योगियों के लिए मोक्ष प्रदान करनेवाली है । इसके संकल्प मात्र से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है ।

॥1॥ कबीर और अखा - ॥पृ0 216॥

॥2॥ रवीसाहब ॥अथ हिरदा को अंग॥ ॥पृ0 254॥

योग में जाप के महत्त्व को दर्शाते हुए रवि साहब कहते हैं कि एक स्वास में चौसठ जाप होते हैं उसी प्रकार उसांस में भी उतनी ही जाप होती है । इसी प्रकार अपने ईस के नामस्मरण का स्वासो-सवास में करने पर भक्त अनायास ही उनको प्राप्त कर सकता है -

श्वासे चौसठ जाप हे, फेर उसासे तेटलाय ।[1] ।30

सुरति-निरति :

संतों ने इस शब्द की व्याख्या विभिन्न रूपों में की है । डॉ0 बड़थ्वाल सुरति शब्द की उत्पत्ति स्मृति से मानते हैं । राधास्वामी मतालम्बि सुरति शब्द का अर्थ जीवात्मा लेते हैं । आचार्य क्षितिमोहन सेन ने सुरति का अर्थ प्रेम और निरति का अर्थ प्रेम वैराग किया है । हजारी प्रसाद जी ने सुरति को अंर्तमुखी और निरति को बहिर्मुखी वृत्ति माना हैं ।[2] साम्प्रदायिक ग्रन्थों में इन दोनों शब्दों की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की गई है ।

इन शब्दों की परम्परा की खोज की जाय तो इसका सर्वप्रथम प्रयोग हमें नाथ पंथ में मिलेगा । सिद्धों की वाणियों में भी इस शब्द के प्रयोग की झलक मिलती है । नाथ पंथियों में सुरति से निरति को मिलाकर शब्द ब्रह्म का श्रवण करना ही लक्ष्य था ।[3]

उपनिषदों में आत्मा का दर्शन करनेवाला, अपने इन्द्रियों को वश में करके उसे अन्तर्मुखी करके आत्मा का दर्शन कराता है । उपनिषदों का यह सिद्धान्त ही तंत्रों के शक्ति, शिवोपासना तथा नाथ पंथियों और संतों के शब्द सुरति योग की वास्तविक आधार भूमि है ।

----

§1§ रवीसाहब नी साखियों - §पृ0 254§

§2§ हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और दार्शनिक पृष्ठभूमि §पृ0 533-534§

§3§ हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और दार्शनिक पृष्ठभूमि §पृ0 711§

गुजरात के संतों द्वारा सुरति निरति का प्रयोग उनकी साखियों में स्पष्ट परिलक्षित होता है । इनकी साधना पद्धति जहाँ एक ओर उपनिषद और वेदान्त की धारणाओं से प्रभावित है वहाँ नाथों सिद्धों की साधनाओं से भी समान रूप से प्रभावित है ।

संतराम महाराज ने "सुरति" शब्द का अर्थ "प्रेम" दर्शाकर साखियों में इसका प्रयोग किया है -

"सुरति शब्दा प्रेम भया है प्रेम भया जब पाया ।[1]"

अर्थात् हृदय में गुरू के प्रति प्रेम उत्पन्न होने पर ही उनसे मिलन का अवसर आया ।

"सुरति मेरी शब्द लगगी जांहा आतम का डेरा ।" (पृ0 259)

कहकर सुरति का आत्मा के रूप में वर्णन किया है ।

सुरति शब्द का स्वरूप वास्तव में अनिर्वचनीय है वह प्रेम, आत्मा, प्राण, मन बुद्धि आदि सबसे अलग होते हुए भी सब कुछ है । एक जगह कवि ने "सुरति मेरी सेज भया" अन्य जगह "सुरति मेरी शुन्य चढ़ी ।" कहा । अतः इसका स्पष्ट करना कठिन लगता है ।

<u>सहजयोग</u> :

संतो ने सामान्यतः जटिलता से सहजता की ओर अग्रसर होने का प्रयास किया है । उन्होंने हठयोग, लययोग, मंत्र योग आदि का सहजीकरण करके उनको सहजयोग में परिवर्तित करने का प्रयास किया है । कार्य में अगर सहजता हो तो अनायास ही उस पर आत्म केन्द्रित किया जा सकता है । कबीर के अनुसार -

"संसार और गृहस्थ जीवन को छोड़कर साधना नहीं हो सकती ।" जब तक साधना में खींचा-तानी रहेगी वह कष्टकर होगी । अर्थात् सहजरूप से आत्मस्थ होकर साधना करने पर उसमें सफलता निश्चित है ।

---

(1) गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी - (पृ0 259)

इन सबसे परे संतों ने मध्यम मार्ग को अनुकरण करने का उपदेश दिया है। इस मार्ग में चलने के लिए कुछ साधारण नियमों का पालन करना, कार्य में सफलता को स्पष्ट करता है। जिसमें सब प्रकार के बाध्य साधनों का मानसीकरण, अजपा जाप, स्वाभाविक विचार, समदृष्टि, तन, मन-बुद्धि को परमात्मा में निविष्ट करना, सतसंगति करना, प्रमति आदि मुख्य है।[1]

प्रीतम ने खींचा तानी छोड़कर सहजरूप से ब्रह्म की आराधना करने के लिए उपदेश दिया है -

सहजस्वरूप है ब्रह्म को,
खेंचा तण सो जीव।[2] 2।

प्रीतम के अनुसार सहजावस्था को प्राप्त करनेवाला ही इस संसार में विजयी हो सकता है। अत: जिसके जिसके हृदय में सहजावस्था का उदय हुआ हो वही श्रेष्ठ है -

सेहेजे दशा सबसे भली, जो अपने उर आय,
कहे प्रीतम संसार कु जीते निशान बनाय। ।3

सहजयोग की महत्ता प्रतिपादित करते हुए ज्ञानी कहते हैं कि जो ज्ञान वेद पुराण पढ़कर प्राप्त नहीं हुए वही सहजयोग के द्वारा प्राप्त हुआ -

काज किया सब सहेज में।। जाग्यायोगवीन दान
ज्ञानी जप तप ना किया।। न पढ़्या वेद पुरान।।[3] 2

----

(1) हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि (पृ0 544)

(2) प्रीतम वाणी - (पृ0 101)

(3) सहैज को अंग - (हस्तलिखित)

बिना ग्र जप तप के भी सहजाचरण के द्वारा ब्रह्म प्राप्ति हो गई । "सहेजे भया प्रकाश" कहकर ब्रह्म प्राप्ति में सहजता के महत्व को प्रदर्शित किया है ।

अखा ने भी सहज को महत्व देते हुए लिखा है कि यह संसार सहजता से ही चल रहा है । प्रकृति का प्रत्येक कार्य सहज रूप सा हो रहा है । यहाँ तक कि इस मानव शरीर का प्राप्त होना भी सहजता के कारण ही सम्भव है । और इसका नष्ट होना भी उसी प्रकार सहज है । अतः मानव इसके नष्ट होने पर क्यों विलाप करता है ।

यहाँ अखा ने सहजाचरण के अर्थ में "सहज आया शरीर" कहा है । अतः मनुष्य को इस संसार की विभिन्न अवस्थाओं को महत्व न देकर साधारण रूप से इस संसारिक परिवर्तन को ग्रहण कर इसके प्रभाव से निर्लिप्त रहना चाहिये -

सहज आया शरीर सब, सहज अखा मर जाय । 77
- अ०र० - ॥पृ० 355॥

अखा के अनुसार मानव जब तक जीवन चक्र को सहज रूप से न समझे तब तक उसका जीवन भय समाप्त नहीं होता ।

सहजजाण्या बिन अखा
कबहु न टले बीक ।। 8 ॥पृ० 354॥

सहजावस्था को जिसने समझ लिया उसके लिए सब कुछ सरल हो जाता है -

अखा जे समझाया सेहेज कुं,
त्यांहां कभी नहीं कोई बात । 16
- फार्बस 33। ॥विश्राम अंग॥

गुजरात के अधिकांश कवियों ने योग, सुरति निरति, सहजावस्था आदि पर अनेकों साखियाँ लिखी है । परन्तु अतिव्याप्ति से बचने के उद्देश्य से इनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किया है । अतः कुछ एक आलोच्य कवियों की साखियाँ ही उदाहरणार्थ प्रस्तुत की है । योग विषयक साखियों की रचना करने में ये कवि सिद्ध हस्त है ।

मन :

डॉ० बलदेव उपाध्याय के अनुसार प्रत्यक्ष के अवसर पर विषय के साथ इन्द्रिय का सम्बन्ध होता है, इन्द्रिय का मन से और मन का आत्मा से । जब तक ये तीनों सम्बन्ध प्रस्तुत नहीं रहते, किसी भी वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता । अतः प्रत्यक्ष ज्ञान के साधन होने से मन की सत्ता सिद्ध होती है ।[1] उन्होंने मन को अन्तरिन्द्रिय कहकर इसे सुख दुःख के उपलब्धि का साधन माना है ।

गुजरात के संतों ने अपनी साखियों में मन को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । मन को प्रपंचों का मूल मानकर उसको वश करके एकाग्रचित्त होकर ईश्वरोन्मुख होने वाला साधक ही अपनी साधना में सफल हो सकता है । शारीरिक प्राणी को स्थूल मानसिक ज्वारों से ऊपर उठकर मनसातीत तत्वों को पाना चाहिये । मन को अमन करना चाहिये । जब अमन (Void of trith thinking activity) हो तो सदाचिदानंदात्मक प्रकाश स्वरूप शक्ति स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार होता है । सामान्यतः यह देखा जाता है कि हमारा मन निम्नगामी अर्थात् भौतिक और प्राणिक भावनाओं के प्रति आसक्त रहता है । हमें इस प्रकार की निम्नगामिता का त्याग करके मन को उर्ध्वगामी बनाना चाहिये । उर्ध्वगामी मन ही ब्रह्म साक्षत्   के परिणाम स्वरूप सांसारिकता के बंधन से मुक्त हो जाते हैं और दिव्यानंद की अनुभूति होती है ।

साखिकारों ने मन को सब प्रपंचों का मूल कहकर उसे वश में करने के अनेक उपायों का निर्देश अपनी साखियों में दिया है । प्रीतम ने चंचल मन को फटकारते हुए कहा -

"मन चंचल वद जात"
मन दुर्जन अतिशय प्रबल"

---

(1) भारतीय दर्शन - (पृ० 300)

कोटि जतन पर मोढीओ, मन नहीं माने लेश, "मन श्रृष्टि को मूल है ।" इन सब गुणों से युक्त होने के कारण प्रीतम कहते हैं जब तक मन वश में न हो तब तक आत्म-ज्ञान होना असम्भव है अर्थात् अज्ञानी मन ज्ञान के उपयुक्त नहीं है -

"कहे प्रीतम मन वश नहीं
तब लग मूरख जाण ।"[1] 22

मन के प्रपंचों का नाश करके ईश्वर के भजन करने का उपदेश कवि ने दिया है । कवि ने अपनी एक गुजराती साखी में मुरख भक्त को समझाते हुए लिखा है कि यह जन्म अमूल्य रत्न की तरह है, इसके बित जाने पर बार-बार इसे पाना असम्भव है । इसलिए प्रीतम कहते हैं इसके प्रपंचों को त्याग कर तत्व विचार में भक्त को जुट जाना चाहिये ।

मनना प्रपंच मुकजे, करजे तत्व विचार
रत्न पदारथ जन्म छे, नावे वारंवार ।[2]

रवि साहब ने क्षुद्र एवं चंचल मन को गंवार, कुटिल, कठोर कह कर संबोधन किया है -

मन घाती मन गुमार अती"
कपटी कुटील कठोर ।"

कहकर उसकी भर्त्सना की है । अत: साधना के पथ पर आत्म संयक का महत्व सुंदर ढंग से प्रतिपादित करते हुए कहते हैं -

"मन कल्पे जल्पे रवी, मांडे बहुत मंडान
मन कु गुरू मुख बीन किये, अन्त:करण अज्ञान ।।" 47
- रवीसाहब नी साखियो (पृ0 327)

----

(1) प्रीतम वाणी (पृ0 82)
(2) प्रीतम वाणी (पृ0 7)

ज्ञानीजी ने मन को साधकर, साहब में नमाये रखने का उपदेश दिया है अन्यथा उसका स्थिर रहना अनिश्चित है -

"मन कु साधे साध सौ, रखे साहेब माहे"

- हस्तलिखित ग्रंथ - संत को अंग

संत भाभाराम ने मन को "मरजीवा" की तरह प्रयोग करने को कहा है क्योंकि एक मरजीवा ही (समुद्र में गोता लगाने वाला) बहुमूल्य रत्नों को खोजकर लाने में समर्थ हो सकता है अर्थात् इस संसार में सब संसारी प्रपंचों का त्याग करके केवल हरि से ही हेत लगाकर उसका ध्यान करना ही साधक का कर्म होना चाहिये-

मन करजीवा होई के,
हरि से कह दो प्रीत (7)

भाभाराम की साखियाँ

तेजानंद ने भी माया से बचने के लिए मन को वश में करने का उपदेश देते हैं :-

मन तेरो माने नहीं डूबत विषय की ओट,

वस्ता के अनुसार सेवा और भक्ति की भावना, मन से ही उपजती है । शुद्ध मन से ईश्वर की पूजा करने पर ही उसकी प्राप्ति होती है ।

"सेवा पूजा मन माही, मन में भक्ति भाव"

शुद्ध मन में पवित्र विचारों का वास होता है । अत: मन ही श्रेष्ठ है ।

गुजरात के अधिकांश संतों ने मन पर विपुल साखियाँ लिखी है । इसके द्वारा जनता में एक ऐसा संदेश भेजा जो उस काल की आवश्यकता थी, क्योंकि मध्य काल में धार्मिक मतभेद के कारण जनता में अशान्ति व्याप्त रहती थी । अत: सरल और सिधे रूप से लोगों को समझाने के लिए हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं में विभिन्न अध्यात्म भावों से आपूर्ण मूल्यवान साखियाँ लिखकर जनसमाज को अनुग्रहित किया है ।

<u>रहस्यात्मकता</u> :

स्वानुभूति की उत्कृष्ठ स्थिति की अभिव्यक्ति दुरूह ही है । वह यथार्थ में अभिव्यक्ति परक नहीं है । स्वनुभूति में निमग्न हो जाने पर अन्य समस्त तत्व विस्मृत हो जाते हैं । अतः स्वानुभूति की अभिव्यक्ति भी अस्पष्ट हो जाती है और उसी को रहस्यमयी कहा जाता है । संतों की यह स्वानुभूतिपरक अस्पष्ट भावना काव्य में रहस्यवाद के नाम से जानी जाती है ।[1]

रहस्यवाद आत्मा की उस सूक्ष्म अनुभूति का प्रकाश है जिसमें वह परमतत्व से अपना सम्पर्क स्थापित करना चाहती है । विरह और कष्टों में आत्मा के मिलन की आकुलता इसमें स्पष्ट है तथा दिव्य शक्ति से सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में अभेदावस्था नहीं रह जाती है ।

रहस्यवाद में आत्मा पत्नी या पति रूप में प्रभु प्रेयसी या {प्रियतम} को प्राप्त करने के लिए बिलखती रहती है । उसका निरन्तर सहचर्य चाहती है । रहस्यवाद में माधुर्य भाव की प्रधानता होती है । रहस्यवादी का दृष्टिकोण प्रेमी का ही दृष्टिकोण है । यहाँ प्रेम का लक्ष्य ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करना है । प्रेम का आलम्बन लेकर ही आत्मा अपने मूल स्त्रोत की ओर प्रवृत्त होती है । इस प्रकार प्रेम रहस्यवाद का सिद्धान्त और व्यापार दोनों है ।[2]

गुजरात के साखिकारों ने रहस्यवाद के द्वारा ब्रह्म विषयक गुढ अनुभूतियों को अति सूक्ष्मता से व्यक्त किया है । रविसाहब, प्रीतम, छोटम, निर्वाण साहब आदि संतों ने दामपत्य प्रतीकों के द्वारा सामान्य जन साधारण को आध्यात्म विषयक तत्वों को बड़ी सरलता से आत्मसात कराया है । इन दाम्पत्य भावों में पवित्रता झलकती है । रहस्यवाद में विरहावस्था का अधिक महत्व है । जिसके लिए गुरू की आवश्यकता है जो भक्त के मन में विरह जागृत कराता है । गुजरात के साखिकारों ने रहस्यात्मक रूप में उपरोक्त भावों को अपनी साखियों का मूल तत्व बताया है -

---

{1} संत काव्य - परशुराम चतुर्वेदी - {पृ0 56}

{2} कबीर के काव्य रूप - डॉ0 नजीर मुहम्मद - {पृ0 193}

निरवान साहब का सांई ﴾ब्रह्म﴿ से संबंध विच्छेद होने के कारण यह जगत विष जैसा लगता है । अतः इस नित्य जगत में रमना नहीं चाहते केवल ब्रह्मलोक का ही ध्यान करना उनका ध्येय है, उसी परमतत्व में रम जाना चाहते हैं -

यहाँ की बाते मत करो, वहाँ की करो बखान,
यहाँ की बात निरवान को, लग रही विष समान ।[1] 2।

परम तत्व से अलग होकर निरवान कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं । केवल उनका दिदार भी हो जाय तो जीवन सफल हो जाय -

लगे ईश्क मेहबूब से, चहे दिदार दरवेश
निरवान के तुम नाथ हो, दूजा कहाँ परमेश ।[2] 32

लालदास ने ब्रह्म से अनित्य प्रेम को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचने पर ही उसका दर्शन होता है और उसके दर्शन के पश्चात् फिर दूबारा जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है, मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है -

अखंड ख्याल रच्यो एक गाम, कोई वीरला बुझे गाम को नाम,
ते गाम कोई वीरला पावे, ते योनी संकट फिर ना वे ।[3] 20

सच्चे भक्त और ब्रह्म के प्रति अपार प्रेम प्रदर्शित करते हुए प्रीतम कहते हैं पतिव्रता केवल पति का ही ध्यान करती है । उसी प्रकार सच्चा भक्त भी ब्रह्म का । उस परमतत्व के रंग में रंग जाने पर उसका मिलन मधुर हो जाता है। नित्यभाव से चातक पक्षी की तरह उसका ध्यान धरने पर भक्त का ब्रह्म से मिलन सम्भव है -

----

﴾1﴿ निरवान साहब ﴾पृ0 863﴿
﴾2﴿ निरवान साहब ﴾पृ0 864﴿
﴾3﴿ गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी - ﴾पृ0 128﴿

पतिव्रता पति कू भजे, नहीं अवर नी आश ।
कहे प्रीतम रंग में रमे, प्रेम पीया के पास ।। 5

सरोवर सरिता समुद्रजल, जहाँ जहाँ भरे अपार ।
प्रीतम चातक चंच दे, पीये न एक लगार ।। 6

– प्रीतम वाणी – (पृ0 74)

विरहाग्नि में जलता हुआ वस्ता का मन स्व-प्रिय दर्शन बिना अत्यन्त दुःखी और उदास है । उनकी आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए तरस रही है। उन्हें बस इतनी आशा है कि उनका मिलन परमात्मा से हो जाय –

आशा अन्तर एटली पियु दर्श की प्यास – 10

विरह बाण से विकल वस्ता कहते हैं –

पियु मिलन के कारणे वाग्या विरहनां बाण 7

एक सच्चे दिवाने की तरह बावरा बनकर अपनी माशुका (ब्रह्म) के लिए भटकते हुए वस्ता कहते हैं –

पियु मिलन के कारणे कमल भयो प्रकाश
दर्द दीवानी बावरी ज्यां त्यां फरू उदास 9

गैब की बात का आभास होते ही वस्ता भटकना छोड़ देते हैं । केवल ब्रह्म के मिलन का ही रूझान रह जाता है –

गैब गोली घट मां लगी कई परे सुझाय
ए तो सबही रूझसे पियु मे कबो थाय 13

– वस्ता नी साखियो – विरह अंग (हस्तलिखित)

सूफी साधना में परमात्मा की प्राप्ति का आधार प्रेम को माना जाता है । सूफी साधना का आधार प्रेम ही है । राम कबीर परम्परा के साधक जीवण-दास का शरीर विरह की अगन में जल कर राख हो गया है उन्होंने उस अग्नि को फिर भी जलाए रखा है । उस अग्नि में जलने का आधार प्रेम है जिसे जीवण ने जलाया है -

विरह अगन मां जीवणां । दीया प्रेम का तेल ।।[1] 4

जीवणदास प्रेम के महत्व को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि बलवीर जैसा परमात्मा केवल प्रेम का ही अधिन है :-

जो जन वाधै जीवणा । प्रेम भक्ति रणधीर ।
ता जनके आधीन हूँ । यूं कहत बलवीर ।।[2] 61

जीवणदास प्रेम को ज्ञान से भी श्रेष्ठ मानते हैं । प्रेम और भक्ति की महिमा प्रतिपादित करते हुए एक सूफी रहस्यवादी की तरह कहते हैं -

ज्ञान कथे सो बावरा । मुक्ति मांगे सो मूढ ।
प्रेम भक्ति बिन जीवणा । जमकी फांसी पाठ ।।[3] 52

राजे को पति धरणी घर मिला है । अत: आत्म विभोर होकर आल्हादित होकर गा उठते हैं कि उन्हें अब ठाठ से रहने की अभिलाषा है । रहस्य-वाद में इस प्रकार का प्रयोग सर्वथा नवीन है । क्योंकि वह भव के बन्धन काटकर ही ठाठ से रहने की आकांक्षा रखता है अर्थात् अन्त: सुख, आत्मसुख एक निष्ठावान भक्त को ही मिल सकता है ।

----

(1) उदाधर्म पंचरत्न माला - (पृ0 126)
(2) उदाधर्म - (पृ0 140)
(3) उदाधर्म - (पृ0 140)

8

राजे एक मोलेसलम मुसलमान होने के कारण एक सच्चे सूफी रहस्यवादी की तरह संसार की प्रत्येक सुन्दर वस्तु में "उसका" सौन्दर्य निहारता हुआ तल्लिनता पूर्वक परमात्मा की ओर उन्मुख हो जाता है और परमात्मा को पाकर उनके प्रेम में रमकर ठाठ से रहना चाहता है -

भव के बन्धन छोड़िए, राजे भुगते धार,
धणी मिला धरणीधरा, काहे न कीजे ठाठ ।[1] 35

वियोग की अनुभूति जीव के लिए ईश्वर से मिलने का साधन है । रवि साहब की वियोगानुभूति ईश्वर से मिलने का पथ प्रशस्त करती है । प्रेमी के वियोग में रविसाहब की आँखों से आँसू के बदले लोहु की धारा निकल रही है । रहस्यवाद की पराकाष्ठा है -

लोचन से लाहु चुवे, बीन देखे महेबुब[2] 30

सूफी कवि जायसी आदि ने भी विरहावस्था में आँखों से खून की बूंदों के चुने का निर्देश दिया है ।

रवि साहब को संसार तृण के समान लगता है -

"रवीदास त्रण सम लेखीये, प्रीतम वीन संसार[3] 42 §पृष्ठ 304§

मेहबूब का रूप देखके भक्त इतना मस्त हो जाता है कि उसका मन और कहीं नहीं लगता -

"देख सजन का रूप सब, लालच लागी नेन.
रवीदास रज कल ना पड़े, प्रीतम बीन नहीं चेन"[4] 45 §पृ0 304§

----

§1§ राजेकृत काव्य संग्रह - §पृ0 218§

§2§ रवि साहब की साखियाँ §पृ0 30§

रविसाहब ने ब्रह्म और जीव विषयक अवधारणाओं को सूफी साधना पद्धति के अनुसार ही व्यक्त किया है । विरह में जलकर प्रेमी हृदय ब्रह्ममिलन की आतुरता को स्पष्ट और सरल शब्दों में उपयुक्त प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है ।

"लाल" की "लाली" का दर्शन करने के पश्चात् आत्मा भी "लाल" हो जाती है । अर्थात् भक्ति में सरोवर हो जाती है । चारों तरफ केवल उसी का दिदार ही दिखाई पड़ता है । जीवणदास यह भी स्पष्ट करते हैं कि इस लाली की लाल में गुलाल होने के लिए बंदगी की आवश्यकता है निष्ठाभक्ति के द्वारा ही गुलाल हुआ जा सकता है । गुजरात के साखिकारों ने न केवल कबीर की परम्परा को ही निभाया है अपितु इसमें और अधिक रहस्य भरकर उसे चरम रहस्य की ओर उन्मुख किया है -

"नूरी भेरे लाल की । जीत देखुं तीत लाल ।
बिन बंदगी क्युं पाइये । जीवण लाल गुलाल ।[1] ।42

राम के वियोग में वस्ता का एक पल एक युग की तरह होता है । उनके मन में विरह रूपी अग्नि जल रही है । जिसमें उनका सर्वस्व जल रहा है । रहस्यात्मभाव से अपने प्रिय के प्रति प्रेमभाव को कवि ने स्पष्ट किया है -

"राम वियोगी प्राणीकु पल पल का युग थाय
विरह अग्नि अंतर लगी तन-मन जल-जल जाय ।[2] 23

ब्रह्म की प्राप्ति अथवा मिलन में राजे इतने मग्न है कि उनको "ब्रज के रजकण" भी श्रेष्ठ लगते हैं । कवि का अस्तित्व "रजकणों" से भी तुच्छ है क्योंकि उन रजकणों को ब्रज की गोपियों का चरणस्पर्श प्राप्त हुआ है जिससे राजे वंचित है । ब्रह्म बिलन की आतुरता में कवि जड़ और चेतन के भेद को भी बिसरा देते हैं ।

---

(1) उदाधर्म - (पृ0 179)
(2) वस्ता नी साखियों - विरही अंग

यह राजे की रहस्यानुभूति की पराकाष्ठा है और यह एक मोलेसलम कवि की विशेषता भी है ।

"राज राजे ब्रीजनार की सारमां सार,
तीन लोकमां ते बधी धन अबला अवतार"[1] 134

निष्कर्षत: कह सकते हैं गुजरात के साखिकारों ने रहस्यवाद विषयक तथ्यों को स्पष्ट करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है । उनका रहस्यवाद आत्मा से परमात्मा का पूर्ण तादात्म्य की कथा है । इनकी साखियों में सर्वत्र रहस्यानुभूति है । पति-पत्नी, गुरू-शिष्य, हंस, टोली से बिछड़ी मृग [टोला वीखूटी मृगली] दव के दाधे वृक्ष, बीज आदि रहस्यात्मक प्रतीकों के द्वारा रहस्य विषयक तत्वों को स्पष्ट किया है और इस प्रयास में वे पूर्णत: सफल रहे हैं ।

अध्यात्म विषयक गुढ़ तत्वों का अध्ययन करने के पश्चात् अब हम साखियों में सामाजिक तत्वों की ओर दृष्टि सहज ही आकर्षित करेंगे ।

---

[1] राजे कृत काव्य संग्रह - [पृ0 227]